कन्याप्येव पालनीया रक्षणीयाति यत्नतः

ऐतिहासिक स्त्रियाँ

आठ प्रसिद्ध ऐतिहासिक सतियों
और
देवियोंके शिक्षाप्रद जीवनचरित्र

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

-: प्राप्तिस्थान :-

दिगम्बर जैन पुस्तकालय

खपाटिया चकला, गांधीचौक,
सूरत-३९५००३

मूल्य १०-००

कन्याप्येव पालनीया रक्षणीयाति यत्नतः

ऐतिहासिक स्त्रियाँ

आठ प्रसिद्ध ऐतिहासिक सतियों
और
देवियोंके शिक्षाप्रद जीवनचरित्र

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

-: संग्रहकर्ता :-

स्व. कुमार देवेन्द्रप्रसादजी जैन, आरा

मूल्य रु. १०-००

प्रकाशक :

शैलेश डाह्याभाई कापड़िया

दिगम्बर जैन पुस्तकालय

खपाटिया चकला, गांधीचौक,

सूरत-३९५००३.

वीर सं. २५२३

विक्रम सं. २०५३

दशमी आवृत्ति

प्रति २०००

टाईप सेटींग एवं ऑफसेट प्रिन्टींग

शैलेश डाह्याभाई कापड़िया

जैन विजय लेसर प्रिन्टस

खपाटिया चकला, गांधीचौक,

सूरत-३९५००३.

टे. नं. : (०२६१) ४२७६२१

निवेदन

सती और शीलव्रती आठ ऐतिहासिक जैन स्त्रियोंके आदर्श चरित्र दर्शानेवाली इस पुस्तककी नवमी आवृत्ति हमने वीर सं. २५११ में प्रकट की थी, वह भी बिक जानेसे इसकी यह दसवीं आवृत्ति प्रकट की जाती हैं। साहित्यसूरि श्री. ब्र. पंडिता चन्दाबाईजी सम्पादिक "जैन महिलादर्श" आराने इसकी प्रस्तावना लिखकर इसका गौरव और भी बढ़ाया है। तथा प्रथमावृत्तिके समय सन् १९१३ में लिखी गई प्रस्तावना तथा स्व. ला. जुगमंदिरलालजी जैन बैरिस्टर व हाईकोर्ट जजकी शुभ सम्मति भी उपयोगी होनेसे फिर प्रकट की जाती है।

यह स्त्रियोपयोगी अपूर्व व ऐतिहासिक पुस्तक कई आश्रमोंमें पढ़ाई जाती है व पढ़ाई जानी चाहिये। अतः जहां२ अभी तक न पड़ाई जाती हो वहां इसको अवश्य प्रविष्ट करना चाहिये। आशा है कि इस दसमी आवृत्तिका भी शीघ्र ही प्रचार हो जायगा।

सूरत
वीर सं. २५२३
मार्गशीर्ष वदी ११
ता. ६-१२-९६

शैलेश डाह्याभाई कापड़िया
प्रकाशक।

सम्मति

मुझे बहुत हर्ष है कि मेरे प्रिय मित्र देवेन्द्रप्रसादजीने इस ऐतिहासिक स्त्रियां नामक उत्तम पुस्तकको लिखकर एक बड़ी भारी आवश्यकताकी पूर्ति की है। मैंने इस पुस्तकको पढ़ा और इसे स्त्री पुरुष दोनोंके लिये उपयोगी पाया। इससे भारतवर्षकी प्राचीन देवियों और पुण्यकीर्ति महिलाओंकी सत्यशीलता, पातिव्रत, वीरता आदिकी झलक दिखाई देती है, जिनके पाठसे पाठकों और पाठिकाओंको अवश्य आनन्दके साथ शिक्षा भी प्राप्त होगी।

मेरी इच्छा है कि यह पुस्तक कन्या पाठशालाओंकी पाठ्य पुस्तकोंमें अवश्य सम्मिलित की जाय। आशा है कि इसके सम्पादक और भी ऐसी पुस्तकें लिखकर हम लोगोंको आभारी करेंगे।

सन् १९१३]

निवेदक-

(स्व. रा. ब.) जुगमन्दरलाल जैनी,

एम. ए.

बार-एट-लॉ एडवोकेट

भू. पू. जज, हाईकोर्ट-इन्दौर।

प्रस्तावना

हर्षका विषय है कि ऐतिहासिक स्त्रियोंका यह संस्करण श्री. स्व. मूलचन्द किसनदासजी कापडिया, दि. जैन पुस्तकालय सूरत द्वारा प्रकाशित हो रहा है। सन् १९१३ ई. में स्वर्गीय बाबू देवेन्द्रप्रसादजी आरा निवासीने इन कथानकोंका संकलन किया था। जैन स्त्री समाजको लक्ष्य कर प्रकाशित होनेवाली यह प्रथम पुस्तक कही जा सकती है। उक्त बाबू साहिबका यह श्रम समाजको बहुत पसंद आया और अबतक इसकी हजारों प्रतियां जैन महिलाओंके हाथोंमें चली गयीं। ऐतिहासिक स्त्रीयां सभीको उपयोगी ज्ञात हुई। स्व. जुगमंदिरलालजी जैनी एम. ए. बार-एट-लॉ जज हाईकोर्ट इन्दौरने अपनी सम्मति लिखते हुए इस पुस्तकको समस्त कन्याशालाओंके पठनक्रममें रखनेकी प्रेरणा दी है।

वास्वतमें पुस्तक शिक्षाप्रद है। जैन सतियोंका इतिहास और उनकी दृढ़ता समझनेके लिये इसको शालाओंमें अवश्य पढ़ना चाहिये, जिससे कि विद्यार्थिनियोंको पूर्व देवियोंका चरित्र मालूम हो जाय और उनके जीवन पर इन सतियोंकी धाक भी पड़ जाय। इस पुस्तकमें ८ चरित्र अंकित किये गये हैं। इनसे बड़ी उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है।

श्री राजुलदेवीसे शीलधर्मका अद्वितीय शिक्षा मिलती है। तथा जगत-प्रसिद्ध सीताजीके चरित्रसे संकटमें रहकर भी अपने धर्मकी रक्षा किस प्रकारकी जाती है, इस दृढ़ताका पाठ मिलता है, इसी प्रकार महारानी चेलनादेवीसे पति सुधारकी व महारानी मैनासुन्दरीसे विचित्र पति सेवाकी शिक्षा मिलती है। वीर नारी द्रौपदीके जीवनसे प्रभुभक्ति और पतिभक्तिके उत्तम फलका प्रदर्शन होता है। तथा इसी प्रकार अंजनासुन्दरी व मनोरमादेवी और रानी रयनमंजूषाके चरित्र भी आदर्श रूप सन्मुख उपस्थित होते हैं। बहिनोंको एक२ प्रति मंगाकर पास रखना चाहिये।

ब्र. स्व. प. **चंदाबाई जैन**, जैन बालाविश्राम-आरा (बिहार)

अवतरण

प्रिय पाठक और पाठिका वर्ग!

महात्माओं और पुण्यात्मा देवियोंकी जीवनी पढ़नेसे इस संसारमें मनुष्यकी सभी उन्नतियां हो सकती हैं। जिस किसी जाति या समाजने इस जगतमें सुख-सौभाग्य प्राप्त किया है, उसने अपने देशके महान् पुरुष और स्त्रियोंके ही पुण्य चरित्रोंका अनुकरण करके प्राप्त किया है किन्तु खेदकी बात है कि ऐसी पुस्तकोंका हिन्दीमें बड़ा ही अभाव है। विशेषतः स्त्रियोंके पढ़ने और अनुकरण करने योग्य पुस्तकें तो बहुत ही थोड़ी है। इसी कारण इस अभावका यत्किंचित् पूरा करनेके लिये हमने यह उद्योग किया है। आशा है कि इससे हमारी कन्याएं और भगिनीगण लाभ उठावेंगी। जिस उद्देश्यसे यह किताब लिखी गयी है, वह यदि कुछ अंशमें भी पूरा हुआ तो उसे हम अपना परम सौभाग्य समझेंगे। इस पुस्तकमें जीवनियां ऐसी दी गई हैं जो कि ऐतिहासिक और शिक्षाप्रद हैं।

आरा
१-१-१९१३

विनीत-
(स्व.) देवेन्द्रप्रसाद जैन।

विषय-सूची

	विषय	पृष्ठ
१.	श्रीमती-राजुलदेवी (राजमती)	१
२.	श्रीमती-सीताजी	६
३.	महारानी-चेलनादेवी	२५
४.	महारानी-मैनासुन्दरी	३१
५.	वीर नारी-रानी द्रौपदी	३८
६.	श्रीमती रानी-अंजनासुन्दरी	४६
७.	शीलवती-मनोरमादेवी	५६
८.	श्रीमती रानी-रयनमंजूषा	६४

महारानी चेलना चरित्र

मूल्य : २०/-

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत-३.

शीलम् परभूषणम्

पातिव्रत धर्मकी महिमा

ताही न बाध भूजंगमको भय,
पानी न बौरै न पावक जालै।

ताके समीप रहैं सुर किन्नर,
सो शुभ रीति करै घट टालैं॥

तासु विवेक बढ़ै घट अन्तर,
सो सुरके शिवके सुख भालै।

ताकि सुकीरति होय तिहूं जग,
जो नर शील अखण्डित पालै॥

-- बनारसीविलास।

ॐ

ऐतिहासिक स्त्रियाँ

"वैरागिणी रमणीरत्न"

१-श्रीमती राजुलदेवी

(राजमती)

धनि धन्य महिलारत्न राजुल, युवा वयमें तप धरा।
भववासक सब भोग तज, निर्वाण सुखमें चित्त धरा॥
गिरनारके उस आम्रवनमें, ध्यानमय आसन धरा।
जिन उच्च पतिव्रत दिखाकर, सुयश जग-मल हरा॥

श्रीमती राजमती भोजवंशीय राजा उग्रसेनकी कुमारी थी। छोटेपनसे ही इनका लालन-पालन बड़ी योग्यतासे हुआ था। अद्‌भूत गुण और सौंदर्यके कारण राजकन्या राजमतीकी प्रशंसा यहांतक बढ़ी चढ़ी थी कि इनके पिताको इनके लिये वर खोजनेमें कुछ भी परिश्रम नहीं उठाना पड़ा। अनेक महाराजा इस लक्ष्मीके लिये स्वयं आ आकर याचना करते थे।

सौर्यपुरके यदुवंशीय राजा समुद्रविजय और रानी शिवादेवी के पुत्र बाइसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथस्वामी, जब तरुणावस्थाको प्राप्त हुए, तब इनके कुटुम्बियोंने भोजवंशियोंको श्री राजमती और श्री नेमिनाथका सम्बन्ध करनेके लिये संदेशा भेजा। यह संबंध सबको रुचिकर जंचा। और विवाहकी तिथि निश्चित होकर टीका भी चढ़ गया।

श्री नेमिनाथस्वामी उस समय सारे भूमण्डलके पुरुषोसे श्रेष्ठत्तम पुरुष थे। इनके जन्मके छः महीने पूर्व ही माता शिवादेवीके यहां रत्नोंकी वर्षा हुई थी। तथा अनेक देव देवियोंने सेवा पूजा की थी। भगवान नेमिप्रभु जन्मसे ही मति, श्रुति और अवधि इन तीनों ज्ञानोंके धारी थे। तथा अत्यन्त शांतचित्त, इन्द्रियविजयी और पराक्रमी थे। ऐसे अद्वितीय गुणयुक्त, त्रैलोक्यनाथ पतिके प्राप्त होनेकी आशासे श्री राजुलदेवीके हर्षका पारावार न रहा। यद्यपि अभी विवाह संस्कार पूरा नहीं हुआ था केवल टीका, कंकण आदि शुभ सूचक रीतियां ही हो पाई थी परंतु श्री राजुलदेवी अपने अन्तरंगमें निजको सर्व प्रकारसे श्री नेमिनाथस्वामीको अर्पण कर चुकी थी।

धीरे धीरे पाणिग्रहणका दिन आया। और बड़े ठाटबाटसे बारात लगनेकी तैयारी हुई। इस समय राजुलदेवी महलके झरोखेपर बैठी बैठी अपने आनेवाले पतिके गुणोंका विचार करके परम हर्षके मग्न हो रही थी। परंतु पाप पुण्यकी लीला बड़ीं प्रबल है। इस समय अशुभोदयने राजुलदेवीको कुछका कुछ दिखा दिया। और उनके साहसकी भलीभांति परीक्षा की।

विवाहका समय निकट होनेपर श्री नेमिनाथस्वामी विशाल रथ पर सवार हो अनेक महाराजाओं सहित सुसराल जा रहे थे

कि मार्गमें बहुतसे पशुओंको एक बाड़ेमें धिरे रोते चिल्लाते देखा। दीनरक्षक श्री नेमिकुमारने रथ रुकवाकर इस भयावने दृश्यका कारण सारथिसे पूछा। उत्तरमें यह सुनकर कि "इन पशुओंका मांस बारातमें आये हुए नीच मनुष्योंके लिये पकेगा" नेमि प्रभुको बड़ी घृणा हुई। फिर उन्होंने अवधिज्ञान द्वारा विचार कर देखा, तो इसका कारण कुछ और ही ज्ञात हुआ। उनको मालुम हो गया कि यह दृश्य इन्हें वैराग्य प्रगट करानेके लिये उनके बड़े भाईने रचा है। सब तरहसे परास्त होकर भावी राजलक्ष्मीकें लोभसे "श्री नेमिप्रभु पृथ्वी पर रहेंगे तो यही राजा होंगे और यदि मुनि हो जायेगे तो हम राज्य करेंगे" इस अभिप्रायसे यह सब प्रचंड श्रीकृष्णजीका ही किया हुआ है।

बस, अब क्या था? इस प्रपंचको देख, श्री नेमिनाथको सचमुच वैराग्य प्रगट हो गया। वे विचारने लगे कि देखो, यह राज्य वैभव कैसा बुरा है; जिसके लिये बड़े बड़े पुरुष भी इतना प्रपंच रचते हैं। धिक्कार है इन इन्द्रिय भोगोंको जो जगतके जीवोंको स्वार्थमें इस तरह अन्धा कर देते हैं। क्षणभंगुर संसार है, इसमें आत्महित ही सार है, इत्यादि बातोंके विचारसे, नेमिनाथको परम वैराग्य हो गया। वे बारह भावनाओंका चिंतवन करने लगे। और शिरका मुकुट उतार कर पृथ्वी पर डाल दिया। कङ्कण तोड फेंक दिया। सांसारिक भोगोंसे मुख मोड़ लिया। संसारमें उदासी, मोक्षलक्ष्मीके अभिलाषी श्री नेमिकुमार, विवाहारम्भके सम्पूर्ण कार्योंको छोड जैनेन्द्री दीक्षा धारण करके गिरनार (जूनागढ) के पहाड पर योगाभ्यास करने लगे। सारे विषयभोगोंको छोड श्री राजुलदेवी जैसी पत्नीको त्याग, ध्यान ज्ञानमें मग्न हो गये।

इधर महलोंमें स्थित कोमल-चित्त राजुलदेवीको यह समाचार मिले कि, "नेमिनाथने वैराग्य ले लिया।" इन शब्दोंने उस देवीके हृदयरूपी कमलका दहन कर दिया। कहां तो वह परम हर्ष और कहां यह विपत्तिका पहाड़ !

सारे राजमहलमें खलबली मच गई। सब मनुष्योंके मुख पर शोक ही शोक झलकने लगा।

राजुलदेवीको सब कुटुम्बीगण समझाने लगे। सबने चाहा कि इन्हे अन्यान्य भोग सामग्रियोंमें लुभा देवें और श्री नेमिप्रभु का दुःख भुला दें। परंतु यह सती ऐसी बुद्धिहीना न थी। राजुलदेवीको उस समय सारा संसार शून्य दिखने लगा। वह क्षणभर भी वहां न टिकीं। समस्त भूषण वस्त्र उतार, वैराग्यमें उद्यम करने लगी। अपने पूर्वकृत कर्मोके लेख को देख, अपनी निन्दा करने लगीं। पाठक पाठिकागण। राजुलदेवीके सतीत्व और स्वार्थत्यागकी प्रशंसा लेखनीसे नहीं हो सकती, आप लोग स्वयं अंतरङ्गमें विचार लेंगे।

ये महासती समस्त कुटुम्बियोंसे विदा मांग, जगतका मोह छोड़, स्वामीकी तरह वैराग्य धर्मको अंगीकार करनेके लिये, गिरनार पर्वतपर ही चली गई। वहां पहाड़ोंको भयानक गुफाओंमें अकेली रहकर परम तप करने लगी। अहा धन्य है! इस सतीको, जिसने पतिके सम्बन्धको इतना दृढ़ निवाहा! इसीका नाम है पतिके सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होना! इसीका नाम है प्रतिव्रत! जो इतने अल्प सम्बंधित पतिको ही अपना सर्वस्व समझ स्थिर हो गई। जिस तरह पतिने संसार त्याग, उसी तरह स्वयं भी साध्वी हो गई।

इधर श्री नेमिनाथ स्वामीकों केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। घातिया कर्मोके नाशसे निर्मल केवलज्ञान ज्योति ऐसी स्फुरायमान

हुई, जिसमें तीनों लोक प्रत्यक्ष दिखने लगे। क्षुधा, तृषा, भय, खेद, स्वेदादि १८ दोषोंका नाश हो गया। परमात्मा अवस्था प्रगट हो गई। यह देख देवोंने समवशरणकी रचना बनाई यानी इतना विशाल सभामण्डप बनाया, जिसमें बारह सभा और अनेक ध्वजा, पताका, तोरण आदिसे सजेधजे और कितने ही स्थान बनाये। इस समवशरणमें, चार बड़े विशाल दरवाजे बने थे, जिनपर अनेक देव देवी गान करते थे। बीचोंबीचमें अत्यन्त उज्जवल स्फटिकमणिका सिंहासन तीन कटनियोंपर शोभायमान हो रहा था। और उसी पर श्री नेमिप्रभु अन्तरीक्ष विराजमान थे। इनके चौगिर्द बारह सभायें थी। जिनमें क्रमसे देव देवी, मनुष्य (गृहस्थ त्यागीमुनि-अर्जिका), तिर्यञ्च, सब बैठे बैठे धर्मश्रवण करें। भगवानकी दिव्यध्वनी (वाणी) में इतना चमत्कार होता है कि उसको सब जीव अपनी अपनी भाषामें समझ जाते हैं।

श्री नेमिप्रभुका समवशरण (सभा) अत्यन्त विभूतिके साथ सङ्गठित हुआ। और सब जगहके भव्य जीव भगवानका उपदेश सुनने आये। इस समय श्रीमती राजुलदेवीकी परम अर्जिका, छः हजार रानियां जो कि सब भगवानके समवशरणमें अर्जिका हुई थी, उन सबकी गुरुआनी हुई, सब अर्जिकाओंको सत्पथ दर्शानेवाली, सबोंकी रक्षिका नियत हुई। अर्जिकाओंके समूहमें राजुलदेवीकी छवि अद्भूत प्रकाशमान प्रतीत होती थी।

सर्वत्र धर्मोपदेश कर, कुछ दिन बाद, श्री नेमिप्रभुको मोक्ष हो गया। और समाधिमरणकर श्री राजुलदेवी स्वार्गारोहिणी हुई। धन्य है इस देवीके साहस! पतिप्रेम!! और धर्म्माचरणको!!!

❖ ❖ ❖

२-श्रीमती सीताजी

"श्री जानकी रामनृपस्य देवी,
दग्धा न संधुक्षितबह्निना च।
देवेशपूज्या भवतिस्म शीला-
च्छीलं ततोऽहं परिपालयामि॥"

रामचंद्रजीका वंश परिचय

इक्ष्वाकु वंश, संसारमें सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि भगवान् आदिनाथ तीर्थंकर इसी वंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके अतिरिक्त अन्यान्य तेजस्वी महाप्रतापी राजर्षिगणने भी, इस वंशकी कीर्ति, अपनी विरता, सदाचारिता और धर्मपरायणतादि गुणोंसे चिरस्थायिनी की हैं। इसी प्रशस्त इक्ष्वाकु वंशमें, कालक्रमानुसार, राजोचित समस्त गुण सम्पन्न, "अरण्य" नामक राजा उत्पन्न हुए तथा इन अरण्य नृपतिके ज्येष्ठ पुत्र महाराजा दशरथ थे। यद्यपि महाराजा दशरथके अन्तःपुर (रनवास) में बहुतसी रानियां थी, पर उन सबोमें कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रभा ये चार रानियां ही प्रधान रानी थी। इन्हीं चार रानियोंसे क्रमसे रामचंद्र, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चार पुत्र-रत्नोंका जन्म हुआ था। इन पुत्रोंके इनके योग्य पिताने बाल्यकाल ही में सुरिक्षित किया। राजकुमारोंके योग्य जो जो विद्यायें उपर्युक्त होती हैं, उन सब विद्या और कलाओंमें उन्हें निपुण बनाया। इस शिक्षाके प्रभावसे इन राजकुमारोंमें नैतिक बल, समीचीन साहस, कर्त्तव्यपराणतादि गुणोंका सन्निवेश वास्तविक था। यही कारण है कि इनका

चरित्र इन गुणोंसे इतने महत्वका है कि न केवल वह आदर्श ही किंतु मनुष्य मात्रको उपादेय और अनुकरणीय है। यह रामचंद्रादि पिताके आज्ञापालक, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय और असाधारण धैर्यशाली थे। आपत्तिकालमें धीरता रखना दुःखितों के दुःखको दूर करना तथा धर्मकी सच्ची प्रभावना करना ही इनके प्रधान गुण थे।

♦

सीताजीका वंश परिचय

जिस प्रकार इक्ष्वाकु वंशमें आदर्श राजाओंने जन्म पाया हैं, उसी प्रकार हरिवंश भी प्रख्यात राजाओंका जन्मदाता है। इस वंशके राजागणोंकी गुणगरिमाने इतिहासमें अच्छा स्थान पाया है।

इसी वंशमें मिथिलापुरीका अधिपति इन्द्रकेतु नामक महाप्रतापी राजा हुआ। तथा इनके जनक नामक पुत्र हुए जो कि अपने पिता इन्द्रकेतुके स्वर्गारोहणके पश्चात् राज्यके शासक हुए। इनका पाणिग्रहण विदेहा नामकी किसी राजपुत्रीसे हुआ था। पाणिग्रहणके कुछ दिन पीछे इन जनकको विदेहासे युगल संतानकी उत्पत्ति हुई। जिसमें एक कन्या और एक पुत्र था। पूर्वजन्म के वैरसे कोई देव पुत्रको उठा ले गया व पीछे दयासे किसी स्थानपर छोड़ दिया। रथनुपुर नगरके चंद्रगति विद्याधर राजाने उसको पाया। और अपने घर ले जाकर उसे पाला पोषा। इधर जानकी भी दिन दिन बढ़ने लगी।

एक दिन नारद सीताको देखनेको आये। सीताने पहले कभी ऐसे मनुष्यको नहीं देखा था। इसलिये नारदको देखकर कोठेमें घुसने लगी। यह कोलाहल देखकर, महलके रक्षकोंने

नारदको पकड़ना चाहा। जैसे तैसे नारदसे उन रक्षकोंसे अपना पिंड़ छुड़ाया और भयभीत हो, किसी पर्वतके ऊपर बैठकर वैरका बदला लेनेकी ठानी। कुछ सोच्र विचारकर सीताका चित्र खीचा। और सीताके भाई भामंडलको वह चित्र दिखाया। यह चित्र इतना मनोहर था कि उसको देखनें मात्रसे भामंडलका चित्त मदनबाणौसे पीड़ित होने लगा। नाना उपचार करने पर भी, उनकी यह व्यथा बढ़ती ही गई। और इतने विचारशून्य हो गये कि किसीकी लाज न करके सबके सामने 'सीता! सीता!' शब्दका पाठ करने लगे।

इस बातको चन्द्रगतिकी रानीने सुना। और समस्त वृतांत अपने पतिसे कहा। चंद्रगति इस समाचारको सुनकर अति विस्मित हुआ। और भामण्डलके पास आकर बहुत समझाया पर उसने एक न मानी। तब चंद्रमतिने यह स्थिर किया कि सीताके पिताको यही बुलाना चाहिये। और भामंडलके लिये सीताकों मांगना चाहिये। इस कामके लिये चंद्रगतिके एक विद्याधरको नियुक्त किया। और वह विद्याधर अपनी विद्यासे जनकको रथनुपुर ले आया। जनकके सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया। जनकने किसी समय अपने विचारको इस तरह स्थिर किया था कि समस्त विद्याओंमें निपुण-सकल कलाओंमें प्रवीण-सीता महाराज दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामचंद्रजीको दूंगा।

इस कारण राजा जनकने चंद्रगतिके प्रस्तावकों मंजूर नहीं किया। तब विद्याधरोंका अधिपति चन्द्रगति और उसके अनुयायी विद्याधर अति क्रुध हुए। और सहसा बोल उठे कि यह वज्रावर्त और सागरावर्त्त नामके धनुष हैं, इनकी जो कोई चढ़ायेगा,

वही सीताका पति होगा। जनकने इस बातको स्वीकार किया और वे विद्याधर उन दोनों धनुषोंको लेकर जनकके साथ मिथिलापुरीको आये। जनकने समस्त राजमंडलको निमंत्रण दिया। चारों तरफसे नाना देशोंके अनेक वीर राजा मिथिलापुरीमें आये। राजा दशरथ भी अपने पुत्रों सहित उस स्थान पर आये। सभामंडप बनाया गया। राजा और राजकुमार अपने अपने आसनपर आकर बिराजे। रामचंद्र और लक्ष्मण भी अपने२ आसन पर बैठ गये।

आज सीताका स्वयंवर दिन है। राजाओंके हृदयमें अनुपम-सुन्दरी सीताका ध्यान लग रहा है। कोई राजा विचारता है कि इसके बिना संसारमें रहना व्यर्थ है। और कोई विचारता हैं इसके रूप और लावण्यके योग्य मैं ही हूं; और कोई इसके योग्य नहीं। इस प्रकार सभामण्डपमें उपस्थित राजागण मनमानी कल्पना कर रहे थे। उसी समय यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया अर्थात् इस बातकी घोषणा की गई कि वही राजकुमार इस परम सुन्दरी सीताका पति होगा जो कोई इस "वज्रावर्त" धनुषको चढ़ायेगा।

वह धनुष बड़ा ही भीषण था, विद्याधरों द्वारा रक्षित था, तथा उसमेंसे अग्निस्फुलिगाओंकी रक्त ज्वालायें, बडें२ के धैर्यकी च्युत करनेवाली निकल रही थी। बड़े बड़े भुजङ्ग अपनी भयावनी जीभे निकाल रहे थे। पर कामके वशीभूत राजगण कब डरनेवाले थे वे मृत्युके मुखमें प्रवेश करनेको तैयार हो गये! अर्थात् धनुषको चढ़ानेके लिये उद्यम करने लगे। पर किसी भी राजाको चढानेकी बात तो दूर उसके पास जानेका भी साहस नहीं हुआ। समस्त राजा अपना२ सिर घूनने लगे।

और अंतमें लज्जित हो ज्यों के त्यों अपने अपने आसन पर आ बैठे।

सब लोक अवाक् होकर रह गये। और प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें यह भावना उत्पन्न होने लगी कि अब इस धरणीतल पर ऐसा कोई वीर नहीं, जो इस धनुषको चढायेगा। पर उन्हें यह मालुम नहीं था कि महाराज दशरथके सुपुत्र श्री रामचंद्रजी इस धनुषको चढायेंगे, और सीताके पति होंगे। जब रामचंद्रजीने देखा कि सबके बल और पौरूषकी परीक्षा हो चुकी, अर्थात् कोई भी इसे चढ़ानेको समर्थ नहीं हुआ, तब महापराक्रमी रामचंद्रजी धनुषको चढानेके लिये उद्यमी हुए और धनुषके पास गये। रामचंद्रजीके पूर्वोपार्जित पुण्योदयसे वे अग्निज्वालायें और वे सर्प एकदम विलीन हो गये।

रामचंद्रजीने उस धनुषको पुष्पमालकी तरह उठा लिया और रामचंद्रजीका मुंह ताकने लगे! बस फिर क्या था? सीताने वरमाला रामचंद्रजीके गलेमें डाल दी। अनन्तर बढ़े समारोहसे श्री रामचंद्र और सीताका पाणिग्रहण हुआ! धन्य!!

रामचंद्रजी और सीताजीकी विशेष बातें

जब राजा दशरथकी कैकेयीके स्वयंवर समयमें स्वयंवरसे असन्तुष्ट राजगणसे भीषण युद्ध करना पड़ा था, उस समय सर्वगुणसम्पन्न कैकेयीने दशरथको असाधारण सहायता दी थी, इसीसे महाराज दशरथने महायुद्धमें विजय लाभ किया था, और सन्तुष्ट होकर कैकेयीको वरदान दिया था। कैकेयीने उस वरको उस समय न लेकर धरोहर रखनेकी प्रार्थना की और महाराजने उसे स्वीकार किया। जब महाराज दशरथको राज्य

करते बहूत समय बीत गया तो उनको संसारमें वैराग्य आया और जिनेन्द्र दीक्षाको ग्रहण करनेको उद्यत हुए। पर कैकेयीके "भरत" संसारसे उदासीन हो पितासे भी पहले दीक्षित होना चाहते थे। कैकेयीको यह बात नही रुची।

पति और पुत्र दोनोंका एक-साथ वियोग देख उसे बुद्धि उत्पन्न हुई और उसने विचारा कि अब उस वरको मांगनेका समय है। यदि उस वरसे अपने पुत्रको राजगद्दी दिला दूं तो मेरा पुत्र दीक्षित न होगा। बस क्या था? रानीने पतिसे अपने धरोहर वरकी याचना की। यद्यपि न्यायसे राज्यका स्वामी होना रामचंद्रको योग्य था, पर दृढ प्रतिज्ञ महाराज दशरथने ऐसा नहीं किया, अर्थात् भरत ही को राज्यका अधिकारी बनाकर दीक्षित हो गये। रामचंद्रजी सहनशील थे, पिताके आज्ञाकारी थे। इसीसे उन्होंने इस विषयमें हस्तक्षेप नहीं किया। और विचारा कि यदि हम इस राज्यमें रहेंगे तो प्रजाजन हमसे अधिक प्रेम करेंगे और हमें राज्यका अधिकारी होनेको बाधित करेंगे इसलिए यहांसे चला जाना ही उचित होगा।

रामचंद्रजी वनको जानेके लिये उद्यत हुए। अपने पतिको वनवास जानेको उद्यमी देखकर सीता आकुल व्याकुल हो उठी और अपने प्राणप्रियके साथ जानेका दृढ़ संकल्प कर लिया यद्यपि रामचंद्रजीने बहुत कुछ समझाया बूझाया, पर उनके हृदयमें एक भी न आई। सीता जानती थी कि, स्त्रियोंको पतिके बिना स्वर्गमें भी रहना अच्छा नहीं लगता। पति ही नारियोंका प्राण है। वही पति ही नारियोंका सर्वस्व हैं! ! हमारा पति वनमें जाय और हम घरमें रहे यह बात कभी नहीं होगी, इत्यादि बातें विचार कर रामके समझाने पर भी उसने अपने

विचारको नहीं बदला और अंतमें सीता अपने पतिहीके साथ वन जानेको उद्यत हो गई।

इसी प्रकार लक्ष्मण भी अपने बड़े भाईका अनुगमन करने को उद्यमी हो गये। जब रामचंद्रजीने कोई उपाय नही देखा, तब सीता और लक्ष्मणको साथ ले वनका मार्ग लिया। हां! कैसा विलक्षण प्रतिप्रेम है! और कैसी गाढ़ भक्ति है, जिससे प्रेरित आज सीता पैदल वनको जा रही है। जिस सीताने कभी पृथ्वीका स्पर्श नहीं किया था, जिसने कभी स्वप्नमें भी दुःख नहीं भोगा था, जिसको यह भी ज्ञान नही था कि, वन क्या वस्तु होती है, वही सीता पतिप्रेममें लीन हो इस वनसे उस वनमें और उससे इसमें भ्रमण करती फिरती है। सीताका अब उन ऊंचे ऊंचे महलों पर पुष्प शय्याका सुख नहीं है। सीताको नाना प्रकारके स्वादु सुखद व्यंजन आभूषण नहीं हैं।

तात्पर्य कहनेका यह है कि सीताके पास सुखकी कोई सामग्री नही है तो भी सीता सुखी है। उसका सुख अपार है। वह अपने सुखके सामने, स्वर्गके सुखको तुच्छ समझती है। तीन लोककी विभूति भी सीताको सुखे तृणके समान है। केवल पतिके चरणकमलोंके दर्शन मात्रसे ही सीता अपनेको परम सुखी जानती है। पतिको सेवा करके ही अपनेको कृतकृत्य मानती है। यही कारण है कि सीता उस भीषण वनको सुन्दर महल समझती है और मार्गमें पड़े हुऐ कंटकोंको पुष्प-शय्या जानती हैं! इसी प्रकार नाना दुःखोंको और अनेक कष्टोंको सहन करके सीता और रामचंद्रको बहुत दिन बीत गये।

जब रामचंद्रने दण्डक वनमें प्रवेश किया उसी समय दुराचारी रावणने अपने छलसे सीताको हरण कर लिया। रामचंद्र

और लक्ष्मण उस समय सीताके पास नहीं थे। इसलिये रावणको अपने कार्यमें कोई भी रुकावट नहीं पड़ी।

जब रामचंद्रने उस स्थान पर आकर देखा कि, सीता नही है, तो अत्यंत खिन्न और शोकातुर हुये। पश्चात् सीताको ढूंढनेके लिये उद्यत हुए। इधर अविचारी रावण सीताको लंकामें लाकर सीताकी इच्छापूर्वक, अपनी धृणित कामनाको पूरी करना चाहता था। यहां पर पाठक पाठिकाओंको यह ध्यान रहे कि रावणने किसी अवसर पर यह प्रतिज्ञा ली कि, जो स्त्री अपनी इच्छापूर्वक हमें चाहेगी उसीका में प्रणयी होऊंगा अन्यथा नही'' इसी कारण, उस कामीने उस अबला पर बलात्कार नहीं किया। किंतु सीताको राजी करनेकी विविध चेष्ठा करने पर भी उनका सुमेरु जैसा मन कुछ भी नही चला। उस समय सीतासे समीप कोई सहायक नहीं था। सीताके प्राणनाथ सीताने हजारों कोसोंकी दूरी पर थे। ऐसे दुर्घट समयमें सीताको भयंकर भय बताये गये। और सहस्त्रो प्रलोभन दिये गये, घोर यातना और तीव्र वेदनाओंसे सीताके विचारको बदलनेकी चेष्टाएं की गई, पर सीताने अपने हृदयको पाषाणका बनाकर उन सब दुःखोंको सहन किया।

सीताका पातिव्रत निर्दोष और सत्य था। इसी कारण दुःख सहनेपर भी उसने थोड़ा भी कलंक नहीं लगने दिया महासती सीताने तबतक अन्न-पानका ग्रहण नहीं किया, जबतक उसने अपने प्राणनाथ कोई समाचार नहीं पाया, महावीर हनुमान (पवनजय) ने सीताकी खोज की, और सीताको लंकामें देखा। देखकर रामचंद्रका कुशल समाचार सुनाया और आश्वासन दिया। इस समाचारको पाकर ही सीताके जी में जी आया

और संकुचित जीवनलताका फिरसे विकास हूआ। इधर रामचंद्रके शुभोदयसे बहूतसे सहायक आन मिले थे। इसलिये बहूतसे वीरों को लेकर उन्होंने लंकापर चढाई की। लंकामें लाकर रामचंद्रने रावणको कहला भेजा कि तुम यदि सीताको अपनी इच्छासे देना चाहते हो तो दे दो अन्यथा हम बलात् सीताको ले जायेंगे और तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा।

इस प्रकार उदारचेता रामचंद्रजीने अपनी गंभीरता और उदारताका परिचय दिया। कामान्ध रावणको एक भी नही सुहाई। उसके विचार टससे मस भी नही हुआ! सो ठीक है- क्योंकि "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः" इस नीतिके अनुसार विनाशके समय लोगोंकी उल्टी मति हो ही जाती हैं। बस क्या था, दोनों पक्षके योद्धागण रणाङ्गणमें उतर पड़े। महा घोर युद्ध हुआ। क्रमशः रावणकी पराजय होती गई। परमरणासन्न रावणके विचारोंमें अंशमात्र भी परिवर्तन नही हुआ। बराबर युद्ध करता ही गया। रावण विषयलम्पटी था, कामके वशीभूत था, कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानसे शून्य था, महा अविनयी था और अविवेकी था, इसलिये उसका अधःपतन हुआ। लक्ष्मणने उसे युद्धमें मारकर परलोकका मार्ग बताया।

रावणकी कीर्ति सदाके लिये लोप हो गई और उसके मस्तकपर ऐसा कलंकका टीका लगा कि आज हजारों वर्षो बीत जानेपर भी उसका मार्जन नही हुआ। यहीं कारण हैं कि आज स्मरण आनेसे उसके ऊपर घृणा आती हैं और ऐतिहासिक दृष्टिसे निरादरका पात्र गिना जाता है। अस्तु, जो होना था सो हो गया, जो भवितव्यता होती है, वह होकर ही रहती है उसे कोई नहीं मेट सकता। रामचंद्रने लंकाका विजय

किया और लंकाका राज्य विभीषणको दिया और अपनी प्राणप्रिया पतिव्रता सीताको लेकर अयोध्या आये। यहां आकर इनका राज्य भिषेक हुआ। राजसिंहासन पर विराजमान हुये। बहूत दिनोंसे बिछुडे हुये अपने परिवारजनोंको सुखमय किया। प्रजापर पुत्रकीं तरह वात्सल्य भावसे शासन करने लगे।

इसी प्रकार, सीता, लक्ष्मण, भरत इत्यादिकोंके साथ सुखसे दिन बिताने लगे। अभी महाराज रामचंद्रको गद्दीपर बैठे अधिक दिन नहीं हुये थे कि अकस्मात् एक घटना आ उपस्थित हुई। नगरके कुछ लोग, समुदाय होकर राजभवनमें आये और आकर बैठ गये। आनेका कारण पूछने पर उन आगतजनोंके धृष्ट नेता 'विजय' नामा पुरोहितने इन कर्णभेदी शब्दोंका उच्चारण किया- ''महाराज! सीताजी इतने दिनोंतक रावणके घरपर रही और उनको बिना सोचे-विचारे आपने अपने गृहमें प्रविष्ट कर लिया! हे प्रभो! आप प्रजाके शासक हैं, आपके आधीन बहुत जनसमुदाय है, राजाका प्रजाके ऊपर अधिक प्रभाव पड़ता हैं। जैसा राजाका व्यवहार होता है वैसा ही व्यवहार उस राजाकी प्रजाका हो जाता है। आपके इस व्यवहारको देखकर प्रजा उच्छखंल और निरर्गल हो गई हैं, इत्यादि।''

यह बात सुनकर रामको अतिशय खेद हुआ। रामचंद्रको अपनी प्रियाके सतीत्वमें लेशमात्र भी शंका नही थी। तो भी रामचंद्र बहूसंख्यक जनसमुदायके शासक थे, सामाजिक नियमोंके पूर्णमर्मी थे पूर्वापर विचारमें अति चतुर थे। वे जानते थे कि इनका कहना ठीक हैं। यदि आज हम ही ऐसा करेंगे तो हमारे आधीन प्रजा भी समाजके नियम परिपालनमें स्वेच्छाचार प्रवृत्ति करेगी। इत्यादि विवेचन कर दूरदर्शी, स्वार्थहीन

महात्मा रामचंद्रने प्राणप्रिया सीताको परित्याग करनेका विचार कर लिया। सीताको गर्भ था। इसलिए उस पुण्यशीलाको निर्वाणभूमिके दर्शनोंकी इच्छा हुई और पतिसे निवेदन किया। रामचंद्रजीको अच्छा अवसर मिल गया। अपने कृतान्तवक्र नामक सेनापतिको बुलाकर कहा कि सीताको निर्वाणभूमिके दर्शनोंके बहानेसे किसी वनमें छोड़कर चले आओ।

कृतान्तवक्र सीताको रथमें बैठाकर भयंकर वनमें ले गया। वहां ले जाकर छोड़ दिया। उस वनको देख सीताको आश्चर्य हुआ। उसने पूछा-क्या यही वह निर्वाण भूमि है? कृतान्तवक्र मनुष्य था ही, उसका हृदय पिघल गया और अश्रुओंकी धारा बहाने लगा। सीताके पूछनेपर उसने सब वृत्तांत सुनाया। सीता इस आकस्मिक वज्रपातसे मूर्छित हो गई। क्षणिकमे सचेत हो मनस्विनी सीता कहने लगी-

"भाई, रुदन मत करो। प्रसन्नतासे अपने स्वामीके पास जाओ" किंतु वहां जाकर हमारा एक संदेशा अवश्य कह देना कि 'जनापवादके भयसे मुझे निरापराधिनीको जिस तरह छोड़ दिया, इसी प्रकार मिथ्यादृष्टियोंके भयसे जैन धर्मको नहीं छोड़ देना।' देखो, कैसा गम्भीर और मर्मस्पर्शी उपदेश हैं! ऐसी घोर दशामें सीताकी सुबुद्धि निस्तब्ध और चंचलतासे बिल्कुल शून्य हैं। आज उसकी जीवन-लीला संसारके सब सुखोंसे दूर हैं, तो भी वह अपने स्वाभाविक धैर्य, साहस और नैतिक बलका अवलम्बन कर आपत्ति पुञ्जको सरलतासे सहन करती चली जाती है।

पाठक और पाठिकागण! देखो, संसारका दृश्य अनोखा है। जो जानकी जगदीश रामचंद्र बलभद्रकी प्रधान रानी है, वही

हिंसक जंतुओंसे पूर्ण वनमें असहाय होकर भ्रमण करे!!! कर्मोकी गति बड़ी विचित्र और दुर्निवार है। यह कर्मोका ही माहात्म्य है, जो महा सती सीताको इन असह्य आपत्तियोंको सहन करना पडा। अस्तु, सीताको छोड़कर कृतान्तवक्रने जाकर रामचंद्रसे सब वृतान्त कह सुनाया और वह संदेशा भी सुनाया जो सीताने आते समय कह दिया था। रामचंद्र गुणवती सीताके गुणानुवाद कर अपने दिन बिताने लगे। इधर एक दिन वज्रजंघ राजा हाथीको पकडनेके लिए उसी वनमें आया था, उन्हें सीताको देखकर दया आई, उसे धर्मकी भगिनी मानकर अपने घर ले गया और सुखसे रक्खा। सीता अपने दिनोंको सुखसे बिताने लगी। नौ महीने पूर्ण होने पर सीताके लव और कुश नामक महा शूर दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। यह दोनों पुत्र बड़े हुये।

एक दिन देवयोगसे सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक वहां आये। क्षुल्लकजीने इन बालकोंको होनहार देखकर शास्त्र और शस्त्र विद्यामें अति निपुण कर दिया। एकबार इन दोनों कुमारोंको देखनेके लिये कलह-प्रिय नारद आये और आकर इन दोनों पुत्रोंको आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों भाई राम और लक्ष्मणकी तरह समृद्धिशाली होओ। कोतुकी बालकोंसे रहा न गया और उन्होंने पूछ ही लीया कि महर्षि! वे राम और लक्ष्मण कौन है? उनका सब वृत्तान्त हमसे कहो। तो नारदने सीताके हरणसे लेकर त्याग पर्यंतका सब वृत्तान्त सुनाया। पिताकी कृतिपर दोनों बालकोंको क्रोध आया और अयोध्याको प्रयाण किया। थोड़े ही दिनोंमें अपनी चतुरंगिणी सेनाके साथ महायोद्धा दोनों भाई अयोध्यामें पहुंच गये और लक्ष्मणके पास दूत भेजा। दूतने आकर कहा--

"महाराज! आपकी ख्याति सुनकर लव और कुश दो राजपुत्र युद्धके लिये आये हैं। यदि आपमें सामर्थ्य है तो इनके साथ युद्ध कीजिये।" राम और लक्ष्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ और बोले-"अच्छा, ऐसा ही करेंगे।" उभय पक्षके योद्धागण संग्राम भूमिमें अवतीर्ण हो गये। महा तुमुल युद्ध होने लगा।

लव रामसे और कुश लक्ष्मणसे लड़ने लगे। लव और कुश दोनों भाई बड़े वीर थे। दोनोंने रणाङ्गणमें अपना अजेय पराक्रम दिखाया। लवने रामके सात रथ तोड़ डाले। इधर कुशने भी लक्ष्मणको अस्तव्यस्त कर दिया। कुशके एक बाणसे लक्ष्मण अचेत हो गये, तब उनका सारथी लक्ष्मणको अयोध्या ले जाने लगा। मार्गमें ही लक्ष्मण सचेत हुए और रणभूमिमें लौट आये। लक्ष्मणने क्रुद्ध होकर कुशके ऊपर चक्र प्रहार किया। चक्र तीन प्रदक्षिणा देकर कुशकी भुजा पर स्थिर हो गया। उसे लेकर कुशने लक्ष्मण पर चलाया, पर उसी तरह प्रदक्षिणा देकर भुजा पर स्थिर हो गया। इसी प्रकार उस चक्रने सात बार गतागत किया पर किसींपर वह नहीं चला अर्थात् किसीका प्राणघात उससे नहीं हुआ। लक्ष्मण अधीर और निरुद्यमी हो गये। चक्र न चलनेसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उपर विमानमें सीता भामण्डल और नारद प्रभुति इस बन्धूसंग्रामको देख रहे थे। नारदने आकर कहा-क्यों अधीर हो गये? लक्ष्मण लज्जित हुए।

फिर नारदने कहा कि यह दोनों सीता-सुत हैं इस बातको सुनकर असीम आनंद हुआ। लक्ष्मण अपने भाई रामचंद्रके पास गये और सब वृत्तान्त कहा। दोनों भाई युद्धके आरम्भको छोड़कर अपने वीर पुत्रोंके सन्मुख आये। रामचंद्र और

लक्ष्मणको आते देख दोनों भाई रथसे उतर पड़े और हाथ जोड़कर विनयनम्र हो रामचंद्रके चरणोंमें पड़ गये। रामचंद्रने बड़े हर्षसे आलिंगन किया और फिर दोनों भाईयोंने लक्ष्मणको नमस्कार किया और लक्ष्मणने अनेक शुभाशीर्वाद दिये।

पश्चात् बड़े उत्सव और समारोहके साथ दोनों पुत्रोंका नगर प्रवेश हुआ और कुश युवराज पदपर अभिषिक्त किया गया। एक दिन सब मंत्रिओंने मिलकर रामचंद्रसे कहा कि महाराज जगतप्रसिद्ध महासती सीताको बुलाना चाहिए। रामचंद्रने कहा "उसके शीलमें हमें कुछ भी संदेह नहीं, पर लोकापवादी भयसे मैंने उसे छोड़ा है। कोई ऐसा उपाय करो जिससे जनापवाद छूट जाय।"

सुग्रीवादिने पुण्डरीकिणी नगरीमें आकर सीताको सब वृत्तान्त सुनाया, और सीताने उसकी बातोंको स्वीकार किया तथा पुष्पक विमानमें चढ़कर सीता-संध्या समय अयोध्या नगरीमें महेन्द्र नामक एक उद्यानमे ठहरी।

प्रभात होते ही रामचंद्रजी और लक्ष्मणजीने जिनेन्द्र भगवान की भक्तिभावसे पूजा की और अपने२ उचित स्थानों पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद सीता आई और वह भी अपने उचित स्थानमें बैठ गई। रामचंद्रजीने कहा-"मैंने तुम्हें केवल जनापवाद के भयसे छोडा है। इसलिये कोई ऐसा उपाय करो जिससे सर्वसाधारणको तुम्हारी निर्दोषताकी प्रतीति हो और तुम्हारे अखण्ड पतिव्रत पर सबका विश्वास हो।"

सीताने पतिके प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार किया और कहा- "अवश्य ही मैं दिव्य परीक्षा द्वारा आरोपित दोषका उद्धार करूंगी।" सीताकी आज्ञानुसार एक सुन्दर स्थानपर कुण्ड

बनवाया गया और उसमें कालागुरु, अगर, चंदन भरवाया गया और उसमें अग्नि लगाई गई। उस समयका दृश्य बहुत मनोहर और भीषण था। असंख्य नरनारी इस अपूर्व दृश्यको देखनेके लिये उपस्थित थे। सभीके हृदयमें नाना भांति विचार उत्पन्न होने लगे। यह सब हो रहा था कि इतने ही में सीताने गंभीर स्वरसे कहा--

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे,
मम यदि पतिभावो राधवादन्यपुंसि।

तदिह दह शरीर पावके मामकेदम्।
सुकृतविकृतनीतिर्देव साक्षी त्वमेव॥

अर्थात्-"हे उपस्थित महानुभावो! ध्यानसे सुनो। यदि मैंने रामचंद्रको छोड़कर अन्य पुरुषकी मन, वचन, कायसे स्वप्नमें भी कामना की हो तो यह मेरा शरीर इस प्रचण्ड अग्निमें भस्म हो जाय।" ऐसी प्रतिज्ञा कर श्री सीता उस धधकती हुई प्रचण्ड अग्निज्वालामें निःशंक हो कूद पड़ी। इसी अवसर पर इन्द्रादिक देव किसी कार्यको जा रहे थे, मार्गमें जब इस घटना-स्थलपर आये तो सीताकों अति पवित्र सती जानकर इन्द्रने शीलव्रतकी प्रभावनाके लिये "मेघकेतु" नामा देवको यहां नियुक्त किया, और वह देव वहां पर आ गया।

सीताने प्रवेश किया ही था कि दर्शकगणोंका-हा जानकी। हा सीते!! ऐसा हाहाकार मच गया और महान कोलाहल होने लगा। रामचंद्र मूर्छित हो गये, लक्ष्मण विह्वल हो गये और दोनों पुत्र भी अतिशय खिन्न हो गये।

तब देवने अपनी विक्रियासे उस अग्निकुण्डको एक मनोहर तालाब बनाया। तालाबके मध्यभागमें सहस्त्र दलका एक कमल बनाया और कमलकी मध्य कर्णिकापर एक सिंहासन निर्माण कर उस पर सीताको बैठाया और सिंहासनके ऊपर मणिखचित मण्डप बनाया। ऊपरसे देवोने प्रसन्न होकर आकाश मार्गसे पंचाश्चर्योंकी वर्षा की और साथ२ उस तालाबका प्रवाह इतना बढ़ा कि दर्शकगणोंको प्राणरक्षा करना असम्भव मालुम होने लगा। धीरे धीरे पानी बढ़ा और बढ़कर दर्शकोंके गलों तक आ गया। घोर आक्रन्दन और आर्तनिदानसे चारों दिशायें गूज उठीं, दशों दिशायें जलसे प्लावित हो गई। और त्राहि! त्राहि! का कर्णवेधी स्वर सब जगह होने लगा।

जब इस बातका सर्वसाधारणको ज्ञान हो गया कि यह सब माहात्म्य पतिव्रता सीताके निर्दोष शीलव्रतका है तब देवने अपनी मायाका संवरण किया। दर्शकोंको शांति हुई और सीताकी निर्दोषताकी प्रतीति हुई। तथा रामचंद्रके शुद्ध और निर्दोष शासनका परिचय मिला।

रामचंद्र भी अपनी पत्नीकी सत्यता और पवित्रता पर मुग्ध हो गये तथा अपनी पत्नीको देवकृत अतिशय श्रद्धासे सम्मानित देखकर फूले अंग न समाये और आनंदके ऐसे आवेशमें आये कि सीताके पास आकर अपने अपराधोंकी क्षमा मांगने लगे और कहा-

"हे प्रिये! मुझे क्षमा करो।" केवल जनापवादसे ही मैंने तुमको छोड़ा, अब आओ, एकबार फिर प्रेमपासमें बन्धे और संसारके नाना सुखका अनुभव करें। भोगोसे विरक्त सीताने उत्तर दिया-"*आपको क्षमा ही है*" पर जिन कर्मोंने ऐसा नाच

नचाया है, उन कर्मोंके लिये क्षमा कैसे हो सकती है? उन कर्मोंके नाश करनेके लिए घोर तपश्चरणकी ही शरण है। संसारका समस्त सार देख लिया, सिवा दुःखके सुखका लेश भी नहीं है। यह प्राणी वृथा ही जंजालमें फंस ममत्व बुद्धि करता है।

वास्तवमें कोई किसीका नहीं। 'यह हमारी माता है' 'यह हमारे भाई बहिने हैं' 'यह हमारी सम्पत्ति है' इत्यादि आडम्बरोंसे यह जीव ज्ञानावरण, दर्शनावरण इत्यादि आठ कर्मोंके बन्धनमें निरन्तर पड़ा रहता है तथा इन्हीं कर्मोंके उदयसे नरक तिर्यंचादि गतियोंमें नाना प्रकारके कष्ट और यातना सहता है।

जब तक यह जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र प्राप्त नहीं कर लेगा तब तक वह संसारमें निरंतर परिभ्रमण करता रहेगा। किन्तु अष्ट कर्मोंके नाश होनेसे उत्पन्न हुए उस अतीन्द्रिय सुखके लेखको भी नहीं पावेगा। प्राणी मात्रका लक्ष्य सुखकी ओर है। पर यह जीव उसके प्राप्त करनेका मार्ग नहीं जानकर बांधवादिके प्रेमबंधनमें पड़कर उस सुखसे सदा बिलग ही रहता है। मैं ऐसी मंदभागिनी हूं कि अनादिसे नाना योनियोंमें परिभ्रमण किया, पर अभीतक अपने ध्येयकी प्राप्ति नहीं हुई। उस परमपद पानेका सरल उपाय जैनेन्द्री दीक्षा ही है। चारों गतियोंमें मनुष्यगति ही ऐसी गति है जिससे उत्तम क्षमादि दशधर्म, अनित्याशरणादि द्वादश भावना तथा अन्य अन्य धर्मके साधनोंको कर सकता है।

जिस जीवने मनुष्य पर्याय पाकर भी कठिन तपश्चरणादिसे आत्माका कल्याण नहीं किया और केवल विषयादिककी पुष्टिहीमें इस शरीरका उपयोग किया, उन नराधमोने 'राखके

लिये मुक्तहारको दग्ध' किया, क्षणिक सुखके लिये नित्य सुखमें अन्तराय किया। इसलिये अब जाओ, मैं तुम्हारे साथ नहीं आऊंगी। किन्तु जैनेन्द्र दीक्षा धारण कर कर्म समूहका नाश करूंगी। इतना कहकर सीताने अपने केश उत्पाटन कर रामचंद्रजीके सामने फेंक दिये और देवपरिवारके साथ श्री जिनेन्द्र भगवानके समवशरणमें जाकर श्री जिनेन्द्र भगवानकी वन्दना कर 'पृथ्वीमति' नामकी आर्जिकाके समीप दीक्षा ले ली और बासठ वर्षतक कठिन तपस्या कर तेतीस दिनका सन्यास धारण करके शरीरको छोड़ अच्युत नामा सोलहवें स्वर्गमें जा स्वयंप्रभा नाम देव हुई।

पाठक और पाठिकागण! आपने भलीभांति जान लिया होगा कि सीताकी सम्पूर्ण जीवनलीला दुःखमय बीती है। सीता पर अनेक दुर्घटनायें हुई हैं उन्हें सीताने निःसहाय होकर भी कैसी सरलतासे सबको सहन किया। सीता अबला स्त्री थी, असहाय नारी थी, पूर्वमें उपार्जन किये हुए कर्मसमूहके वशीभूत थी। अतएव एकके उपर एक आपत्ति आती रही पर सीता हाथ पर हाथ रखकर बैठ नहीं रही। उसने आत्मावलम्बन लेकर असाधारण पौरुषका परिचय दिया। हम देखते हैं कि यदि हम पर थोड़ी भी आपत्ति आ जाती तो हम मृततुल्य हो जाते हैं। हमे कर्तव्य अकर्तव्यका ज्ञान नहीं है। इसका कारण स्पष्ट है कि हममें वह स्वात्मावलम्बन नहीं है।

हम सर्वदा दूसरोंकी बाट देखा करते है। हमारे पास वह सीताकासा शील नहीं है। हम सत्य बोलना नहीं जानते, हम इन्द्रियोंके वशमें पड़े हुए है। हमें विषय कषायसे इतनी प्रीति है कि हमे धर्मके कार्य नहीं भाते। हमारी इन्द्रियां इतनी चंचल

और चपल हैं कि हम किसी सुन्दर वस्तुको देखते हैं तो हमें मोह अवश्य हो जाता है। भला बताईये कि जब हमारी यह दशा है तो हम कैसे आत्मिक उन्नति कर सकते हैं, हम सीताके साहससे कोसों दूर है। हममें सीता जैसा जितेन्द्रियताका लेश नहीं है। यही कारण है कि हम अभी तक अपने वास्तविक लक्ष्यके मार्ग पर नहीं पहूंचे हैं, प्रत्युत दिनोंदिन गिरते चले जाते हैं।

हम सीताके चरित्रको प्रतिदिन पढ़ते हैं और अनेक व्याख्यान और उपदेशोंमें सीताकी गुण गाथा सुनते हैं, पर जब यह सोचते हैं कि हमारे कितने भाई और कितनी भगनियां सीताके गुणोंका अनुसरण करती हैं तो हमें बिलकुल निराश होना पड़ता है। यदि हमारे समाजमें दो चार ही विदुषी सती समान उत्पन्न हो जाय, तो थोड़े समय में ही हमारा महिलामण्डल उन्नतिके शिखर पर पहूंच जाय।

हमें आशा और विश्वास हैं कि धर्मके महत्व और उन्नतिके अभिलाषी पाठक और पाठिकागण इस पुण्यात्मा पतिदेवता-शिरोमणि सीताके चरित्रको पढ़कर कुछ न कुछ लाभ अवश्य उठायेंगे।

धर्मगतप्राणा-

३-महारानी चेलनादेवी

"चेलना रानी थी श्रेणिक राजका,
विद्वती पतिव्रत-रता सिरताज थी।
उसने निज आध्यात्मिक बलसे यथा,
धर्ममय पातकी किया सुनिये कथा॥

अनुमान २५०० वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो चुका। वैशालीपुर (सिन्धु प्रदेश) में महारानी चेलनाका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम महाराज 'चेटक' था। जो उस नगरमें शांतिपूर्वक राज्य करते थे। माताका नाम रानी 'सुप्रभा' था।

इनकी छः बहिनें थीं। जिनमें पांच इनसे बड़ी और एक छोटी थी। सबसे बड़ी राजकुमारी प्रियकारिणी (त्रिशला) कुण्डलपुर (बिहार) के सिद्धार्थ नामक राजासे विवाही गई थी। इसी शुभ संयोगसे जैन धर्मकी सारे भूमण्डलमें विजय वैजयन्ती उड़ानेवाले अंतिम तीर्थंकर, श्री वर्द्धमान (महावीर) स्वामीका जन्म हुआ।

इन सातों राजकुमारियोंको बाल्यावस्थामें उत्तमोत्तम शिक्षाएं दी गई थीं। जिनसे इन्होने और विषयोंके साथ२ सत्य धर्म जैनधर्मका मर्म अच्छी तरह समझ लिया था।

संयोगवश राजकुमारी चेलनाकी शादी राजगृही (बिहार) के राजा श्रेणिकके साथ हुई। महाराज श्रेणिक बौद्ध धर्मावलंबी थे। इसलिये दोनों स्वामी और भार्या अपने अपने धर्मकी प्रशंसा कर एक दुसरेको अपने धर्ममें लानेकी प्रेमपूर्वक इच्छा करने लगे। उपर लिखा जा चुका है कि राजकुमारी चेलनाको बाल्यकालमें स्वधर्म जैनधर्मकी शिक्षा उत्तम रीतिसे दी गयी

थी, इसी कारण राजा श्रेणिकके कई उपदेश व प्रयत्न निष्फल हुए और अंतमें राजाको ही इस धर्मयुद्धमें पराजित होकर जैन धर्मको खुशीके साथ धारण करना पड़ा, जिसका वर्णन इस प्रकार है-

एक समय राजा और रानी सुख-आसन पर बैठ परस्पर प्रेमालाप कर रहे थे कि बौद्ध धर्मावलम्बी राजगुरु जिनका नाम 'जठराग्नि' था पधारे। महात्मा जठराग्निको भलीभांति ज्ञात था कि महारानी जैनधर्मावलम्बी हैं। इसीलिये अवसर पाकर कटाक्षपूर्णव्यङ्ग शब्दोंमें कहा कि-"क्षपणक (जैनगुरु) मरकर क्षपणक (भिक्षुक) होते हैं।"

महारानीको इस असत्य वाक्यसे बहुत संताप हुआ। होना ही चाहिये, क्योंकि एक सत्यधर्मको अनुयायिनी अपने धर्मकी इस प्रकार निन्दा नहीं सह सकती, परंतु उस समय महारानीने शांति धारणकर विशेष कुछ न कह राजगुरुसे पूछा-

"महाराज! आपने कैसे जाना?" उत्तर मिला कि "मुझे विष्णु भगवानने ऐसी ही विद्या दी है।" महारानीने समझ लिया कि महाराज गप्पाष्टक झाड़ रहे हैं। इनकी परीक्षा करनी चाहिये ताकि सन्देहकी निवृत्ति हो। उन्होंने प्रगट रुपसे कहा कि महाराज! अगर आप ऐसी बुद्धि रखते हैं तो हमारे महलमें भोजनके लिये कर आपका निमंत्रण है। महाराजने सहर्ष स्वीकार कर लिया। यथासमय अपने कुछ चुने हुए शिष्योंको लेकर नियत स्थानपर आ पहूंचे और जुते उतार बैठक खानेमें बैठे। महारानी चेलनाकी आज्ञानुसार एक दासीने कुछ जूते उठाकर खाद्य पदार्थोंमें इस तरह मिलाये कि जिससे बिल्कुल मालूम न पड़े।

पश्चात् भोजन कराया गया। महाराजने अपने शिष्यों समेत खूब अच्छी तरह भोजन किया। जब जाने लगे तब देखा कि कुछ जूतोंका पता नहीं है। महलके अंदरसे जहां सैकड़ों संगीनदारोंका दिन रात पहरा रहता हैं जूते कौन ले जा सकता है? इसलिये महारानीसे पूछा गया। महारानीने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि आप तो बुद्धि रखते हुए भी इस तरहके प्रश्न करते हैं। आखिर सब हाल विदित हो गया और अपमानित होकर राजगुरुने अपने स्थानको प्रस्थान किया। उनको अपने गप्पाष्टको का पूरा प्रायश्चित मिला महाराज श्रेणिकको अपने प्रसिद्ध विद्वान् राजगुरुकी इस तरह कार्य व मूढ़ता देख बौद्धधर्मसे कुछ अश्रद्धा हो गई। महारानीने यह देख अपने कार्यकी सफलताके चिह्न समझ और भी उत्तम उपायोंसे काम लेना आरम्भ किया।

एक समयका वर्णन है, जब कि बौद्धधर्मावलम्बी साधुगण एक झोंपड़ीमें बैठे परमेश्वरकी ओर ध्यान लगाये थे, राजा-रानी सहित वहांसे निकले। जिन धर्मकी परम भक्तियुक्त शुद्ध हृदया महारानी चेलनाका इन पहुंचे हुए साधुओंकी भी परीक्षा करनेका विचार हुआ। उन्होंने अपने अनुचरी द्वारा उस झोंपड़ीमें अग्नि लगवा दी। अग्निको प्रज्वलित देख साधुओंने ध्यान वगैरह सब छोड़ भागना आरंभ किया।

अंतमें क्षणमात्रमें सारी झोंपड़ीं खाली हो गई। राजा और रानी दोनों इस मनोहर दृश्यको छिपे हुए देख रहे थे उसी समय वह थोड़ीसी अग्नि शांत की गई। बड़े विद्वान् और तपस्वी महात्माओंकी बगुलाभक्ति इस तरह दूसरे वक्त भी जाहिर हो गई। इस तरह अपने धर्मकी हंसी उड़ाते देख महाराज महारानीसे अवश्य रुष्ट हुए। तो भी महारानी अपने कार्यमें तत्पर रही,

क्योंकि उनको अपने स्वामीकी आत्माको यथेष्ट शांति देनेकी इच्छा थी।

महाराज श्रेणिक एक दिन शामके समय शिकार खेलकर आ रहे थे उन्होंने मार्गमें एक जैन मुनिको जो नग्नमुद्रा धारण किये शांतिके स्वरूप थे, ध्यानमें लवलीन अचल खड़े हुए देखा। राजाने धर्मद्वेषसे मुनिपर अपने शिकारी कुत्ते छोड़े। परंतु मुनिके प्रभावसे वे कुत्ते द्वेषबुद्धि छोड़कर मुनिके पास जाकर बैठ गये। महाराजाको यह और भी बुरा लगा। इसलिये उन्होंने स्वयं वही पड़े हुए एक मृतक सर्पको उठाकर मुनिके गलेमें डालकर महलका रास्ता लिया।

चार दिन व्यतीत होनेपर रात्रिके समय जब महाराज और महारानी सुख-शय्यापर बैठे परस्पर वार्तालाप कर रहे थे, महाराजने मुनिके साथ किये हुए कार्यका वृत्तांत भी सुना दिया। महारानीको इससे बहुत कष्ट हुआ। अपनी प्राणप्यारी भार्याको सन्तापित देखकर महाराज बोले-

''क्या अब तक वह मृतक सर्प मुनिके गलेमें पड़ा रहा होगा जो इतना संताप करती हो?'' महारानीने सरल वाणीसे उत्तर दिया कि जब तक कोई अन्य पुरुष उस सर्पको अलग नहीं करेगा, तब तक वे मुनि अपने उपसर्गको जानकर वहीं अचल रहेंगे।

राजाको यह जानकर आश्चर्य हुआ और उसी समय थोड़ेसे सेवकों द्वारा दीपकोंका प्रकाश करकर रानी सहित मुनिके स्थानको गये। वहां जाकर देखा तो मुनि महाराज शांत मुद्रा धारण किये उसी आसनसे विराजमान हैं, जैसे कि चार दिन पहिले थे। गलेमें उसी तरह सर्प पड़ा हुआ है जैसा कि डाला गया था। राजाके हृदयमें एकदम भक्तिका समुद्र लहरा उठा।

उन्होंने मुनिकी बहुत प्रकारके स्तुति की। रात्रि होनेसे मुनि महाराज कुछ बोल न सके। अतः राजा और रानी दोनोंने शेष रात्रि उन्हींके चरणारबिंदोंके समीप व्यतीत की।

प्रातःकाल होते ही राजा और रानीने मुनि महाराजकी वंदना की। मुनि महाराजने दोनोंको समान रूपसे "धर्मवृद्धि" आशीर्वाद दिया। राजाके भकिरूपी समुद्रका तो अब ठिकाना ही क्या हो सकता था? उन्होंने समझ लिया कि यही सत्य गुरु हैं, जिनके स्वच्छ हृदयमें अपराधी और निरपराधी बराबर हैं! असीम भक्तिके कारण महाराजने मुनिके चरणोंमें पूर्व धर्मानुसार अपने सिरको अर्पण करनेकी इच्छा की।

मुनि अंतर्यामी थे, इसलिये उन्होंने इनके विचार समझ लिये तथा यह कार्य पापकर्म बतलाकर धर्मोपदेश दिया। राजाको बहुत आश्चर्य हुआ। अब उनकी श्रद्धा जैन धर्ममें पूर्ण रूपसे हो गयी। रानीने अपने सारे परिश्रमको सफल समझा तथा दम्पति यथार्थ आनंदके साथ काल व्यतीत करने लगे।

रानी चेतनाके क्रमशः कुणिक, वारिषेण, हल्य, विहस्थ, जिनशत्रु, राजकुमार और मेघकुमार ये सात पुत्र-रत्न उत्पन्न हुए, जो कि विद्या, बल और रूपमें इन्द्रको भी मुग्ध करते थे।

एक वनमाली (जगल महालके कार्यकर्ता मुहकमेके अफसर) ने राजसभामें आकर राजा श्रेणिकसे निवेदन किया कि-महाराज! आपके राज्यके अन्तर्गत विपुलाचल (विंध्याचल) पर्वतपर जगद्गुरु २४ वें तीर्थंकर वर्द्धमान स्वमी संसारी जीवोंके उपकारार्थ उपदेश देनेको पधारे हैं। राजाने इस समाचारको पाकर बहुत आनन्द मनाया। तथा महारानी चेलना और सर्व कुटुम्बियों सहित स्वामीजीके दर्शनोंके निमित्त गये।

विपुलाचल पर्वतपर पहूंचकर स्वामीजीके उपदेश देनेको सभा (समवशरण) की प्राकृतिक रचना देखकर चकित हो गये। केन्द्रस्थलमें स्वामीजी अनुपमेय सिंहासन पर विराजमान हैं। जिनके चारों तरफ गोलाकार बारह सभास्थल बने हुए हैं। जिनमें क्रमसे मुनि, कल्पवासिनी देवियां, भवनवासी-देव, मनुष्य, विद्याधर भूमिगोचरी और तिर्यंच विराजमान हैं। सब द्वेषभाव छोड धर्म श्रवण कर रहे हैं। यद्यपि ये सभायें स्वामीजी के चारों तरफ स्थित हैं, तो भी असीम प्रभावके कारण सब श्रोतागणको यही ज्ञात होता है कि भगवान अपने मुखमण्डल की दीप्ति इसी तरफ फैलाकर उपदेश दे रहे हैं, महाराजा और महारानीने स्वामीजीके दर्शन और पूजन करके अपने जन्मको कृतार्थ समझा।

नियमानुसार महारानी चेलना तीसरे और महाराजा श्रेणिक ग्यारहवें सभास्थलमें विराजमान हुए। धर्म श्रवण कर तथा कई शंकाओंकी निवृत्ति कर महाराजने अपने परिणामोंको (अन्य निमूल मतोको बिलकुर छोड़कर) खूब स्वच्छ किया, जिससे उनको प्रबल पुण्य-कर्मोंका बन्ध हुआ। इन्हीं प्रबल पुण्य-कर्मोंके अखण्ड प्रतापसे आगामी कालमें महीप्रभ नामक तीर्थंकर होकर जगतके पूज्य होंगे।

उक्त सभामें श्री सम्मेदशिखरजीकी अनुपम महिमा सुनी, जहांसे बीस तीर्थंकर संसारके आवागमनको छोड़ परम सुख रूप मोक्षको गये हैं। इसीलिये महाराजा और महारानीने उस पुण्यभूमिके दर्शन करनेकी इच्छा की और शुभ मुहूर्तमें प्रस्थान किया। परंतु उपर कह चुके हैं कि महाराजा श्रेणिकने एक जैन मुनिके गलेमें अपमानके साथ मृतक सर्प डाला था इसी पाप कर्मके उदयसे मार्गमें उन्हें कई बड़े२ विघ्नोंका सामना

करना पड़ा। तो भी वे उस पवित्र तीर्थके दर्शन न कर सके और वापिस अपनी राजधानीको लौट आये। महारानी चेलनाने तो निर्विघ्नतासे तीर्थकी वंदना की और अपने स्थानको आई।

अपनी अवस्थाको पूर्ण होती देख युवराज कुणिकको राज्यभार देकर महाराजने एकांतमें रहकर ईश्वरोपासना करना शुरू की। परंतु राज्यभारसे मत्त होनेके कारण कुणिककी प्रवृत्ति बिगड़ गई। इसलिये राजा श्रेणिकको अन्त समय सुख नहीं हुआ।

थोडे ही दिनोंके बाद रानी चेलना भी दीक्षा धारणकर समाधिमरण करके स्वर्ग सिधारी।

देखिये! राजकुमारी चेलनाने किस कौशलसे अपने स्वामीको सत्यधर्ममें श्रद्धावान् कराया तथा जगत्‌का पूज्य बनाया, जो कि एक अनुकरणीय कार्य है।

सती शिरोमणि

४–श्रीमती मैनासुन्दरी

"साध्वी समीचीना सदा, जिन भक्तिसे परिभाविता।
कर चक्रवर दृढ नेमसे, पति प्रीतिसे परिप्लाविता॥
जिसने अलौकित शक्तिसे, पति कुष्टको वारण किया।
वह धन्य रमणी रत्न है, श्रीपाल नृपवरकी प्रिया॥"

महारानी मैनासुन्दरी इसी भारतवर्षकी विश्वविदित उज्जैन नगरीके राजा पहुपालकी कनिष्ठ पुत्री थी। इनकी ज्येष्ठ भगिनी का नाम सुरसुन्दरी था। दोनों राजकुमारियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध उनकी इच्छानुसार क्रमशः शैव और जैन पुरोहितको दिया गया।

शिक्षा समाप्त हो चुकने पर इन्होंने यौवनावस्थामें पदार्पण किया। राजाको इनके विवाहकी चिंता हुई। और उन्होंने प्रथम ज्येष्ठपुत्री सुरसुन्दरीको बुलाकर प्रश्न किया कि तुम्हारी अवस्था विवाह योग्य हो गई है। इसलिये तुम्हारी इच्छा किसके साथ विवाह संबंध करनेकी हैं सो कहो तदनुसार कार्य किया जावे।

कुमारीके उत्तरानुसार उसकी शादी कौशांबीपुरके राजकुमार हरिवाहनसे करना निश्चय कर दी गई। इसी तरह राजाने दुसरी पुत्री मैनासुन्दरीको बुलाकर प्रश्न किया, परंतु राजकुमारी मैनासुन्दरी बहुत ही लज्जावती और गुणवती कन्या थी। उसे लज्जारहित प्रश्न कुलवधुओंसे किया जाना अनुचित मालुम हूआ।

इसलिये लज्जायुक्त होकर उसने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। फिर राजाके अनुरोधसे उसने विनय की कि "उच्च कुलकी प्रतिष्ठित कन्यायें अपने माता पिताओंसे कभी अपने लिये वरकी इच्छा प्रगट नहीं करती। पिता-माता उनका जिसके साथ संबंध कर देते हैं वही उनका सर्वस्व हो जाता हैं और उसीसे वे संतुष्ट रहती है, आपका मूझसे यह प्रश्न करना अनुचित है।" राजसुन्दरीको इस स्वाधीनता और महत्वपूर्ण उत्तर से तथा और भी कई उत्तरोंसे जिनमें कि उसने सबसे श्रेष्ठ राजाको न बतलाकर अपने भाग्यको बतलाया था, सुन्दरीसे राजा असंतुष्ट हो गया और क्रोधके आवेशमें आकर उसके भाग्य-गर्वको नष्ट करनेके लिये उचितानुचितका कुछ विचार न कर प्रयत्न सोचने लगे।

एक दिन राजा पहुपाल ससैन्य वनक्रीडा करता हुआ उस भयंकर जंगलमें जा पहुंचा, जहां चम्पापुरका राजा श्रीपाल अपने पूर्वकृत कर्मोके उदयसे कई अनुचरों सहित कुष्टरोगसे अत्यन्त पीडित हों अपने शरीरकी दुर्गन्धसे प्रजाजनोंको कष्ट

न हो, इसलिये चाचा वीरदमनको राज्यभार सौंप राजधानी छोड़ जंगल जंगल भटकता हुआ वहां ठहरा था। उसके शरीरकी दुर्गंधि चारों ओर फैल रही थी। राजा पहुपाल राजा श्रीपालके अनुचरोंसे यह सब हाल जानकर अपनी कनिष्ट पुत्री मैनासुन्दरी के भाग्यरूपी गर्वका बदला चुकानेका अच्छा अवसर आया जान शीघ्र श्रीपालके पास गया और आदर सत्कारके पश्चात् कृत्रिम प्रसन्नता प्रगट कर अपनी सुकुमारी पुत्री मैनासुन्दरीको देनेका संकल्प कर उसका टीका कर दिया। राजा श्रीपाल उसका भेद न समझ बहुत प्रसन्न हुआ।

यहां राजा पहुपालने राजाप्रासादोंमें आकर सुन्दरीको उसके भाग्यकी प्रबलताका पराजय रुप यह समाचार सुनाया परंतु सुन्दरीने यह सहर्ष स्वीकार किया और शीघ्र अपने स्वामीसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित हुई। उसको किसी तरहका भी संकल्प विकल्प नहीं हुआ। राजा पहुपाल राजकुमारीकी यह कृति देख और भी रुष्ठ हुआ। राजमर्हिषी प्रधान-मंत्री, प्रधान सेनापति, राजपुरोहित आदिके समझानेपर भी राजाने कुछ ध्यान न दें क्रोध व अहंकारसे उन्मत्त होकर शीघ्र ही शुभ तिथिमें कुमारीका विवाह उस कुष्ठ रोगसे कुरुप हुए राजा श्रीपालसे कर दिया। कुमारीने अपने पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य कर इस अयोग्य राजा श्रीपालको अपना स्वामी बनाया।

उज्जैनके प्रजाजन इस संबंध पर बहुत असन्तुष्ठ हुए तथा उन्होंने राजाको बहुत धिक्कारा। अंतमें जब सुकुमारी सरला रामकुमारी मैनासुन्दरी रोगसे कुरुप पतिके साथ अपने महलसे विदा होकर पतिके स्थानको जाने लगी तब तो राज पहुपालके ज्ञानचक्षु खुल गये। उन्होंने अपने किये पर बहुत पछतावा किया और सुन्दरीसे क्षमा देनेकी प्रार्थना की। कुमारीने अपने भाग्यका

ही फल समझकर राजाको संतुष्ट किया और आनंदसे पतिके साथ गई।

सुन्दरी स्वामीके शिबिरमें आकर अपनेको कृतकृत्य समझने लगी। उसी दिनसे उसने स्वामीके रोगकी निवृत्तिके लिये उपाय सोचना प्रारम्भ कर दिया तथा उनकी हर तरहसे सेवा सुश्रुषा करने लगी। यद्यपि राजा श्रीपालने कुमारी मैनासुन्दरीको उसके रूप, यौवन, सुकुमारतापर ध्यान देकर तथा उस राजप्रासादोंमें सुखसे रहनेवाली कोमलांगीको इस शिबिरमें रहनेके क्लेशों पर ध्यान देकर उसे बहूत समझाया कि जबतक हमारा यह रोग दूर न हो जावे तबतक तुम अपने मातापिताके पास सुखसे रहो, परंतु सती साध्वी सुन्दरीने सब सुखोंसे श्रेष्ठ पति-सेवा ही समझकर स्वामीके चरणोंकी सेवामें ही रहना श्रेयस्कर समझा।

एक दिन राजकुमारी मैनासुन्दरी उज्जैनके जिन मंदिरोंमें दर्शन करनेके लिए गई। दर्शनोंके पश्चात् अपने पूज्य गुरुजीके भी दर्शन किये और समय पाकर अपने स्वामीके रोगका सम्पूर्ण वृतान्त सुनाकर असकी निवृत्तिका कारण पूछा। गुरुजी बड़े प्रतिभाशाली पंडित थे। इसलिये उन्होंने कुमारीको संतोषित करके उसके स्वामीके शीघ्र आरोग्य होनेका हाल ज्योतिषसे देखकर बतलाया। तथा कुमारीको अष्टाह्निका व्रतके अनुष्ठान करनेका उपदेश देकर उसके पालनेकी विधि बताकर विदा किया। अष्टाह्निका व्रतका समय आनेपर कुमारीने सविधि व्रतानुसार कार्य करना आरंभ किया। प्रतिदिन वह जिन मंदिरमें जाकर परमात्मा वीतराग भगवानका पूजन स्तवन करने लगी। *अभिषेकका गन्धोदक लेकर अपने पतिके शरीरमें लेपन करने* तथा अन्य रोगियोंके उपर भी छिड़कने लगी। रोग धीरे धीरे

आराम होता गया। और अष्टाह्निक पर्वके अंतिम दिन राजा श्रीपालका शरीर महा भयानक कुष्ट रोगसे सम्पूर्ण निवृत्त होकर बहुत ही सुन्दर हो गया। राजकुमारीके भाग्यकी जय हुई और राजा पहुपालको लज्जावन्त ही नीचा देखना पडा। राजा श्रीपाल और कुमारी मैनासुन्दरी उज्जैनमें रहकर आनन्दसे समय व्यतीत करने लगे।

एक दिन रात्रिके समय जब कि चारों ओर शब्द लेश मात्र भी नहीं सुनाई देता था यकायक राजा श्रीपालकी नींद खुल गई। और उन्हें अपनी जन्मभूमि, राज्य कुल आदिकी चिंताने आ घेरा। उन्होंने विचारा कि अब मेरा यहां रहना अयोग्य है मुझे अपने राज्य और वंशकी रक्षा करना चाहिए। परंतु विना ऐश्वर्य और वैभवके राजधानीमें जाना भी योग्य नहीं है। इसलिये मान प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिये प्रथम विदेशको जाना चाहिए। पश्चात धनधान्य आदिसे परिपूर्ण होकर स्वदेश जावेंगे। ऐसा विचार निश्चय कर उन्होंने अपनी भार्याको भी सुनाया। मैनासुन्दरी पहिले तो स्वामीके विछोहके दुःखोंका अनुभव कर बहुत दुःखित हुई। परंतु फिर सोच समझकर उन्होने स्वीमीको विदेश जानेकी अनुमति दी और अपनेको भी साथ ले चलनेका अनुरोध किया। परंतु विदेशमें होनेवाले दुःखोंका अनुभव कर राजा श्रीपाल मैनासुन्दरीको साथ न ले जाकर सिर्फ अकेले विदेश यात्राको निकले और बारह सालके भीतर आनेका वादा कर गये।

स्वामीके विदेशगमनके पश्चात् मैनासुन्दरी उनके वियोगसे अति दुःखित रहती थी। जब बारह साल पूर्ण होनेको आये तब वह स्वामीके आनेके दिन, घण्टे घण्टे और पल पल गिनने लगी। बारह साल पूर्ण हो गये परंतु स्वामीके दर्शन

नहीं हुए। महापतिव्रता सती मैनासुन्दरीको प्राणांत कष्ट हुआ, परंतु वीतराग भगवानका ध्यान कर उन्होने निश्चय किया कि अगर आज भी स्वामीके चरणारबिंदोंके दर्शन नहीं हुए तो फिर संसारके सर्व झंझटोंको छोड़ जिन दीक्षा धारण कर आत्मकल्याण करूंगी। परमब्रह्म परमात्माने उस सतीकी अति दारुण कारुणिक ध्वनि सुनकर शीघ्र ही उसके पतिके दर्शन दिये। उसी दिन महाराज श्रीपाल असीम साहस और विपुल विभूति तथा आठ हजार रानियोंके साथ उज्जैनी नगरीमें आये।

अहा! आज मैनासुन्दरीके आनन्दसागरका किनारा नहीं दिखता है। स्वामीके दर्शन कर उसने अपने नेत्र तृप्त किये। कुछ दिन उज्जैनीमें रहनेके पीछे महाराज श्रीपालने दलबल सहित अपनी प्राचीन राजधानी चम्पापुरीको कुच किया तथा अपने राज्यको सम्हाल कर फिर सुवर्ण और हीरोंसे दीप्त सिंहासन पर बिराजे। मैनासुन्दरीने राजमहिषीका आसन ग्रहण किया, और फिर दोनों राजा रानी सुखसे समय बिताने लगे।

एक दिन संध्या समय, जब कि महाराज श्रीपाल अपने महलकी छतपर बैठे हुए प्रकृतिकी शोभा देख रहे थे उनको एकाएक मेघपटल छिन्नभिन्न होते हुए दिखाई दिया। उनको ज्ञात हुआ कि इसी प्रकार यह संसार भी क्षणभंगुर है। यह सब एक न एक दिन नष्ट होनेवाला है। मेरा शरीर भी इसी प्रकार एक दिन नष्ट हो जायगा। परंतु अभीतक मैंने अपनी आयुका सब समय सांसारिक सुखमें ही व्यतीत किया है। परमार्थके सुखके लिये मैंने कोई उद्योग नहीं किया।

इसलिये मुझे अब परमारठ सुधारनेमें प्रयत्नशील होना चाहिये। उनको इस संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ और शीघ्र ही जिन दीक्षा धारण कर, वे अपने कर्म-शत्रुओंको परास्त करने

लगे। स्वामीको जिन दीक्षा लेते देख, रानी मैनासुन्दरीने भी जिन दीक्षा लेकर अपना परमार्थ सुधारनेमें मन लगाया। थोड़े ही दिनोंमें राजा श्रीपाल अपने कर्म-शत्रुओंको जीत केवलज्ञान प्राप्त कर अनन्त-अविनाशी परम सिद्धपदके अधिकारी हुए, जहां सदा असीम आनन्द रहता है। मैनासुन्दरी भी सबसे उत्कृष्ट १६ वें स्वर्गकी अधिकारिणी हुई।

"नारिनको पतिदेव, वेद सब यही बखाने। ब्रह्मा, विष्णु, महेश नारि पतिहीको जाने॥" सब देव यही कहते हैं कि स्त्रियोंके लिये आराध्य देव पति ही है। पतिहीको वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश जानती है। आचार्योंने पतिभक्तिके विषयमें कहा है- 'पतिप्राणा हि योषिताः।' अर्थात् नारियोंके प्राण पति ही हैं। यही कारण है कि मैना जैसी सुन्दरीने कोसों तक दुर्गंध फैलनेवाले कुष्ट रोगसे पीड़ित श्रीपालके प्राणोंकी तरह रक्षा की।

शोक और खेदका विषय है कि आज यह बातें केवल इतिहासकी कथा मात्र रह गई है। संसारमें पति और पत्नी विद्यमान है। पर पति पत्नीका यह भाव नहीं है वह मेल मिलाप नहीं हैं। अगर है तो पारस्परिक कलह और ईर्ष्या! इस दुर्घट समयमें समाजकी रक्षा परमात्मा ही करें।

पाठक और पाठिकागण! इस चरित्रमें आपने अच्छी तरह देख लिया होगा कि स्वार्थके वश होकर माता और पिता भी अपनी प्रिय सन्तानके साथ कितना अनिष्ट और कैसे२ निन्द्य दुष्कर्म कर सकते हैं। जब स्वयं जनककी यह दशा है तो अन्य जन अन्य जनोंकी सन्तानके प्रति, जो अन्याय और अत्याचार करें उसकी कोइ गणना नहीं की जा सकती है।

यह उदाहरण आजकलका नहीं किंतु आजसे कई हजार वर्ष पहिलेका है। इससे इस बातका भी पता लगता है कि

आज ही नहीं पहले जमानेमें भी इस पृथ्वी मण्डल पर ऐसे२ नराधमोंने जन्म लेकर मानव समाजके इतिहासकी कलंकित किया हैं अन्तर केवल इतना ही कि पहले जमानेमें ऐसे नर पिशाचोंका दर्शन कहीं कहीं पर और कभी२ होता था और आजकल तो सब जगह और बहुलतासे इन दुष्टोंका दौर दौरा है भगवान ऐसे पिताओंसे बचाये।

♦

५-वीर नारी रानी द्रौपदी

"वीरांगना श्री द्रौपदीके, सुयश जलसे लहलहा।
यह हो रहा है आजतक, भारत विटप कुसुमित अहा!
अद्भुत अलौकिक धर्म उनमें, शौर्य या त्यों आत्मबल।
जो घोर दुःखमें भी किये, विध्वंस अरिदल अति प्रबल॥"

श्रीमती द्रौपदी राजा द्रुपद तथा महारानी भोगवतीकी प्रिय सुता थी। इनका जन्म माकन्दीपुरमें हुआ था। बाल्यवस्थासे ही इन्होंने बड़े२ शक्तिशाली और पूर्ण बुद्धिमत्ताके कार्य किये थे। इनके रूप, गुण सहनशक्ति आदिका वर्णन अकथनीय है। ये परम विख्यात सती भारतको अपने सुगुणोंकी प्रशंसासे उज्वल कर गई हैं। इनका संक्षेप चरित्र इस प्रकार है-

जब श्रीमती द्रौपदीजी बाल्यावस्थाको पूर्ण करती हुई यौवनावस्थामें पैर रखने लगी तब राजा द्रुपदको इनके विवाहकी चिंता हुई। राजा विशेष उद्योग कर भी न पाया था कि खलाखल पहाड़ पर रहनेवाले सुरीन्द्र नामके एक विद्याधरने आकर धनुष और एक कन्या राजा द्रुपदको सौंपी और कहा;-

"महाराज! मैंने भविष्यवक्तासे पूछा था कि मेरी कन्याका वर कौन होगा? उन्होंने कहा था कि वह राजकुमार द्रौपदीका वर होगा, जो इस गांडीव धनुषको चढ़ावेगा, वही व्यक्ति तेरी सुताका स्वामि भी होगा।" ऐसा कह और गांडीव धनुष्य तथा अपनी कन्याको वहां रख विद्याधर अपने निवास स्थानको रवाना हो गया।

इधर राजा द्रुपदने भी यह बात पसन्द की। गांडीव धनुष्य बड़ा भारी और बडा तेजवाला धनुष्य था, उसको उठा लेना सहज न था, बड़े पराक्रमी शूरवीर भाग्यशालीका कार्य था। इसलिये परीक्षा करके ऐसे ही वरको द्रौपदीको देना उचित समझ राजा बहुत प्रसन्न हुआ। शुभ मिती पर स्वयंवरकी रचना की गई और देश देशके राजकुमारको निमंत्रण भेजा गया।

श्री द्रौपदीजीकी प्रशंसा सर्वत्र इतनी फैल रही थी कि निमंत्रण पाते ही चारों तरफसे बड़े२ राजपुत्र दौड़े चले आये, कोई उच्च राजपुत्र ऐसा न था जो इस स्वयंवरमें न आया हो। कौरव दुर्योधनादि सौ भाई बडे ठाटबाटसे आकर स्वयंवर मंडपमें बैठे। इन्हींके चचेरे भाई राजा पांडुके पुत्र महाबली युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव ये पांचों पांडव भी छिपकर ब्राह्मणके भेषमें आकर स्वयंवर मण्डपमें एक तरफ बैठ गये।

संपूर्ण सभा जमने पर एक एक नृपति धनुष्यको चढानेके लिये उठे परंतु चढाना तो दूर रहा उसके तेजको न सह सहनेके कारण धनुष्यके पास भी न जा सके। राजकन्या द्रौपदी भी अपनी प्यारी सुलोचनाके साथ घूमती हुई इन नृपोंका कौतुक देख रही थी। उक्त सखी क्रमशः एक एक राजपुत्रको मय नाम पतेके बताती जाती थी और द्रौपदीजी मन ही मन सबकी जांच करती जाती थी।

जब गांडीव धनुष किसी राजकुमारसे नहीं उठा तो राजा द्रुपद कुछ चिंतातुर हो गये। इतनेमें ही ब्राह्मण वेषधारी युधिष्ठिर महाराजने अपने भाई अर्जुनको आज्ञा दी कि तुम शस्त्रविद्यामें अद्वितीय हो। उठो और धनुष्य चढाकर सर्वोत्तम गुण रूपकी राशि द्रौपदीको वरो।

बस, भ्राताकी आज्ञानुसार अर्जुन महाराजने झट धनुष्यके निकट जाकर धनुष्यको चढ़ा लिया और ऐसा वेध किया मानो नियत मोतीपर निशाना मार दिया हो। इनके धनुष्यकी ऐसी घोर आवाज हुई कि जो सैंकड़ो हजारों तोपोंसे भी तेज थी। सब सभास्थ राजकुमारोंके कान भन्ना गये, मानों बहरे हो गये हों। बस, शीघ्र ही श्रीमती द्रौपदीजीने वरमाला (पुष्पकी माला) अर्जुनके गलेमें अति प्रसन्न चित्तसे डाल दी।

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि द्रौपदीजीके पांचों पांडव पति थे, यह बात सर्वथा गलत और जैनशासनसे विरुद्ध है। ये तो परम सती थी। विवाह एकके ही साथ हो सकता है। इनके एक अर्जुन ही पति थे, द्रौपदीजी बड़ी चतुर थी। उन्होंने प्रथम ही सर्व राजकुमारोंसे विशेष अर्जुनको ही समझ लिया था, औरोंकी चमक दमककी परवाह न कर गुणोंको ही ग्रहण किया था।

इस संबंधको देख दुर्योधनादि बड़े२ राजकुमार बहुत बिगड़े, बहुत युद्धादि करने लगे, परंतु रञ्चमात्र भी सफलीभूत न हुये। अर्जुन तथा द्रौपदीके भाई धृष्टदमनने सबको परास्त कर भगाया। इस युद्धादिसे द्रौपदीजी भी नहीं घबराई, उन्होंने भी साथ साथ पति तथा भाईको सहायता दी। (पूर्वकालमें राजकन्या भी शस्त्रविद्याका अभ्यास रखती थी) अंतमें नियत मिती पर द्रौपदीकी पाणीग्रहण विधि सानन्द सम्पूर्ण हो गई

और ये दम्पत्ति गजपुरमें आकर आनंदसे रहने लगे। गजपुरका आधा राज्य इन पाण्डवोंके आधीन था, आधा कौरवोंके।

द्रौपदी अर्जुनके अपूर्व आनंदसे कौरव सदा जलते रहते थे और नित्य नये उपद्रव करते रहते थे।

एक समय कौरवोंके मुखिया दुर्योधनने दुष्टाभिप्रायसे जुएका खेल प्रारंभ किया और उसमें पाण्डवोंको भी शनैः२ फंसा लिया। छलबलसे बिचारे पाण्डव सब बाजी हार गये, और इस इक्करार पर खेल तय हुआ कि १३ वर्षतक पाण्डव छिपे वनमें रहे, बाद आकर राज्यादि करें, अन्यथा नहीं।

इस समय द्रौपदी रानीको बड़े२ उपद्रवों द्वारा दुर्योधनने बहुत कष्ट पहुंचाया परंतु सती द्रौपदीने समयानुकूल सब कुछ सहकर पति आदि पाण्डवोंका साथ किया। छहों प्राणी जाकर वनमें निवास करने लगे। वहां जाकर भी दुर्योधनने युद्धादि किया।

अंतमें १२ साल बीत चुकने पर जब एक साल रह गया तब इन पांचों पांडवोंने सोचा कि अब १ वर्ष बिलकुल गुप्त रीतिसे रहकर अंतमें कुछ अपना प्रभाव किसी विदेशी राजाको दिखा कुछ यश-गौरव सम्पदा लेकर घरको जाना है। अतः सबसे सलाह की कि भेष बदलकर विराटपुरके राजा सुदर्शनके यहां नौकरी करे।

द्रौपदीजी भी अपने पतिकी अनुगामिनी थीं। उन्होंने भी राजाके यहां मालिनका काम करना पसन्द किया। अर्जुनने नृत्य सिखलानेका, भीमने रसोई करनेका नकुलने घुडसालका सहदेवने गोधनका और युधिष्ठिर महाराजने पुरोहितका काम पसन्द किया। सब मिलकर राजा विराटके यहां रहने लगे और अपने२ काममें अद्‌भुत चतुराई दिखाने लगे। द्रौपदीजी मालिनके भेषमें रहकर बडी योग्यतासे पुष्प गूंथती थी। इनके माला हारादि

इतने सुन्दर सुडौल बनते थे कि राजा सुदर्शनकी महिषी चकित हो जाती थी। सोचती थी कि यह चतुर मालिनी कौन है? एक दिन राजाका साला कीचक पाहुना आया था। वह द्रौपदीजीके बने पुष्पहारको देखकर चकित हो गया। उसी समय उसके हृदयमें कुविचारोंने आवागमन जारी कर दिया। अंतमें द्रौपदीजीको उसने देखा और उनपर मोहित हो गया। उस दुष्ट एकांतमें द्रौपदीजीसे प्रार्थना की कि आप मेरी पट्टरानी बनने योग्य हैं, मेरे साथ चलिये, मुझ पर प्रसन्न हूजिये, इत्यादि दीनताके वचन कहें तथा भय भी दिखाया। इस दुष्टके उपर्युक्त वचनोंको सुनकर द्रौपदी सतीके हृदय पर वज्राघातसे भी अधिक चोट पहुंची। वह विचारने लगी कि अहो! यहां पर भी चैन न मिली। किस तरह शीलरत्नकी रक्षा होगी, इत्यादि विचारोसे उक्त सतीका हृदय कंपित हो गया, परंतु समय पड़ने पर अबला सबसे सबला हो सकती है, इस वाक्यानुसार द्रौपदीजी सचेत होकर कीचक दुष्टको झाडने लगी। उन्होंने तीव्र क्रोधमें आकर कीचकको खूब आड़े हाथों लिया, खूब कटु वचनोंकी बौछार की जिससे कीचक निराश हो स्वस्थानको लौट गया।

कीचक दुष्ट उसी दिनसे खान-पानादि छोड अपनी महानिंद्य वासनाकी पूर्तिके उपाय सोचता हुआ शय्यापर दिन काटने लगा।

इधर द्रौपदीजीने अर्जुनसे अपनी अपार दुःखावस्थाका वर्णन किया जिससे उनको बड़ा क्रोध उपजा, परंतु भेद खुलने पर अपना छिपाना दुःसाध्य जानके चुप रह गये और यह सुनकर द्रौपदीजीको धैर्य बधाने लगे। द्रौपदीजीको पतिके कहनेसे धैर्य नहीं हुआ, उन्होंने भीम महाराजसे सब वृत्तान्त कहा। भीमने कहा कि-सती! तुम पश्चाताप मत करो। हम अप्रगट रूपसे ही कीचक दुष्टसे बदला लेंगे। उन्होंने एक युक्ति निकाली यानी

द्रौपदीजीसे कहा कि तुम कीचकसे आज रात्रिकों किसी स्थान पर आनेका संकेत कर दो। बस, जब वह दुष्ट वहां आयेगा मैं स्त्रीके भेषमें उसे जा पछाड़ूंगा। द्रौपदीजीने ऐसा ही किया।

रात्रिके समय कीचक पापात्मा उत्कटतासे नियत स्थान पर गया। वहां कृत्रिम द्रौपदी-(भीम) ने उसे धर पछाड़ा, उसके घृणित मनोभावका प्रत्यक्ष फल दिखला दिया।

अपना काम कर (कीचकको मार) भीम स्वस्थानको आ गये और द्रौपदीजीसे सब वृत्तांत कह सुनाया। प्रातःकाल कीचकको द्रौपदीके कारण मरा जान उसके सौ भाईयोंने बड़ा दंगा मचाया। द्रौपदीजीको पकड़कर त्रास देना शुरू किया। यह देख भीम महाराजने फिर युद्ध किया और कीचकके सब भाईयोंको हरा दिया।

अबके युद्धसे सबको थोड़ा थोड़ा पता लग गया कि ये पांडव हैं। इधर इन लोगोंका १ वर्ष भी पूरा हो गया था। ये प्रगट होना ही चाहते थे कि कौरवोंने फिर युद्ध किया। अंतमें पांडवोंकी ही जीत हुई और जय-पताकाके साथ फिर इन लोगोंने अपने पुरमें प्रवेश किया। कुछ दिन पति आदि समस्त कुटुम्बियोंके साथ सानन्द व्यतीत होने हो पाये थे कि सती द्रौपदीको एक विपत्तिका फिर सामना करना पड़ा।

एक दिन रानी द्रौपदी सिंहासनपर बैठी थी कि नारदजी आये। उनको देखकर द्रौपदीजी उठ न सकी और न प्रणाम ही किया। वे अपने श्रृंङ्गारमें लगी थी।

यह बात नारदजीको बहुत बुरी लगी। वे शीघ्र ही वहांसे लौट गये और मनमें द्रौपदीजीको नीचा दिखानेका विचार करके घातकी खण्डस्थ सुरककापुरीके राजा पद्मनाभके यहां जाकर उसे द्रौपदी रानीका चित्र दिखा दिया। इस कौतुकको

कर नारद तो लम्बे पड़े परंतु राजा पद्मनाभका चित्त भ्रष्ट हो गया। उसके यहां बड़ा अनर्थ हो गया। राजाने बड़े२ कठिन परिश्रमोंसे किसी देवको वशकर रानी द्रौपदीजीको सोते हुए पलंग सहित अपने यहां मंगा लिया।

बैचारी निष्पाप द्रौपदी कुछ भी नहीं जानती थी कि मेरा हरण कौन दुष्ट कर रहा है, मुझ पर कौनसी विपत्ति आ रही है? इस सतीकी यकायक निंद्रा टूटी तो देखती है कि एक राजा इसकी शय्यापर बैठा बैठा बड़े हावभावके वचन बोल रहा है। द्रौपदीजीने ख्याल किया कि शायद स्वप्न देख रही हूं इससे उन्होंने पुनः मुख ढक लिया। पास बैठा दुष्ट पद्मनाभ इस भेदको समझ गया।

उसने कहा-''उठो प्रिये! निद्रा तजो, यह स्वप्न नहीं है। इत्यादि इत्यादि वचन कहें। इन्हें सुनकर द्रौपदीजी प्रतिबोधित हो गई। सब मामला समझमें आ गया। आह! आज इस सतीके उपर कैसा उपसर्ग हो रहा है। यों बड़े आर्त्तनादसे विलाप कर रोने लगी। इनकी गगनभेदी आवाजसे पद्मनाभका सारा महल फटने लगा। मानो काष्ट पत्थर भी रुदन करने लगे। उक्त सतीने पद्मनाभको मिलापके साथ बहुत कुछ समझाया, परंतु वह पापार्थी कब शांत होनेवाला था? अंतमें जब देखा कि अन्य उपाय रहित होनेपर द्रौपदी प्राण दे देगी तब वह दुष्ट उठकर चला गया और यह कह गया कि १ मासमें जरूर प्रसन्न हो जाना।

द्रौपदीजीने ख्याल किया कि एक मास बहुत है। इसमें धर्म साधनादि कितने ही उपाय मैं भी कर सकूंगी और योद्धा पांडव भी आकर इस दुष्टका अवश्य हीं निग्रह करेंगे। बस, इस विचारसे वे खानपानादि त्याग जिन मंदिरमें चली गई और अत्यन्त विश्वास साहस सहित भगवद् ध्यान करने लगीं।

इधर पाण्डवोंने देखा कि द्रौपदीका हरण हो गया। इस घटनासे सारे राज्यमें शोक मच गया। अर्जुन महाराज पत्नी वियोगसे अति दुःखीत हो गये, परंतु फिर साहसकर पांचों भाई खोजने निकले। अनेक युक्तिओसे काम लेते२ तथा उन्हीं नारद महाराजकी उलटी दया दृष्टिसे द्रौपदीका पता लग गया। वहां सुरकंकापुरीमें जाकर खूब रण हुआ और अंतमें पद्मनाभको हरा, जिन मंदिरस्थ द्रौपदीको लेकर घर आ गये।

अब फिर द्रौपदीजीके दिन आमोद प्रमोदमें व्यतित होने लगे। कई पुत्र-रत्न उत्पन्न हुए और परम नीति मार्गसे सांसारिक सुख भोगने लगीं।

बहुत दिन इस अवस्थामें बीते। एक दिन श्री नेमीनाथ स्वामीका समवशरण धर्मोपदेश करता हुआ आया। वहां जाकर पाण्डवोंने धर्मोपदेश तथा अपनी भवान्तरी सुनी, जिससे पांचो भाई परम वैराग्य रसमें डूब गये और भगवान् नेमिप्रभुके सामने समस्त गृह जंजालसे छोड़ वीतरागी दिगम्बरी दीक्षा धारणकर आत्महित करने लगे। पतिकी यह अवस्था देख द्रौपदी रानीने भी श्री राजुलमती आर्जिकाके निकट जा दीक्षा धारण करली, और परम उग्र तप करने लगी। अहा! जो शरीर परमोत्कृष्ट भोगोंसे रमा था, वही आज आत्मध्यानके रसमें पगा, उग्रोग्र तप कर रहा है। कुछ दिन तप जप करके अंतमें समाधिमरण कर श्रीमती द्रौपदीदेवी सोलहवें स्वर्गमें देवी हुई और वहांसे चयकर क्रमशः मोक्षकी पात्र होंगी।

साधु चरित्र–

६-रानी अंजनासुन्दरी

"सहन शीलताकी प्रतिमूर्ति, धन्य धन्य तुम।
पतिव्रता सतियोंमें 'उज्जनि,' अग्रगण्य तुम॥
बाइस वत्सर पति विछोहका, कष्ट सहन कर।
धन्य निवाहा पतिव्रत, पावन अति सुन्दर॥"

रानी अञ्जनासुन्दरी महेन्दुपुर (दक्षिण हिन्दुस्थान) के राजा महेंदु और रानी हृदयवेगाकी परमप्यारी पुत्री थी। पद्मपुराणमें लिखा है कि-बाल्यावस्थामें इनको अन्य सब विषयोंकी शिक्षाओंके अतिरिक्त गांधर्वकला तथा धर्मशास्त्रकी शिक्षा पूर्ण रीतिसे दी गई थी। योग्य युवावस्था होनेपर पिता माताने इनका विवाह आदित्यपुरके राजा पह्लाद और रानी केतुमतीसे उत्पन्न वायुकुमार (पवनकुमार) से करना निश्चय किया।

कुमारने अपनी भावी प्रियतमाके रूप गुण और शिक्षाकी प्रशंसा सुनकर गुप्त रीतिसे उससे मिलनेकी इच्छा की, तथा वे शीघ्र अपने एक मित्रके साथ वायुयान द्वारा आदित्यपुरसे महेंदुपुरको रवाना हुए। महेंदुपुर पहुंच अञ्जनासुन्दरीके महलके सप्तम खण्डपर-जहां कि सुन्दरी अपनी सखियों सहित बैठी मनोरंजन कर रही थी-जाकर छिप रहे तथा उस मण्डलीकी गुप्त वार्ता सुनने लगे। समय भी वही था, इसलिए सखियां सुन्दरीकी शादीपर अपने अपने विचार प्रकट कर रही थीं। अभाग्यवशात् एक उनकी अदूरदर्शी सखीने-जो कि सिर्फ रूपपर न्यौछावर होकर कुमारीकी शादी किसी अन्य कुमारके

साथ कराना चाहती थी-प्रस्तावित सम्बंधपर अपना असंतोष प्रकट किया।

स्वाभाविक लज्जावश सुन्दरीने प्रकट रूपसे इसका कोई विरोध नहीं किया, परंतु वायुकुमार जो इस संवादको सुन रहे थे अपना अपमान समझ दुःखित हुए। उनको यह भी भ्रम हो गया कि सुन्दरीको मेरे साथ सम्बन्ध करना स्वीकार नहीं है इसलिए उन्होंने सखी द्वारा मेरी निंदा सुनकर उसका विरोध नहीं किया। इस कल्पनाने कुमारके हृदयपर अपना अपना अधिकार जमा लिया तथा कुमारीकी तरफसे अरुचि उत्पन्न कर दी। मित्र सहित वे शीघ्र अपने स्थानपर आए और सुन्दरीसे सम्बन्ध न करनेकी प्रतिज्ञा की। उक्त गुप्त समाचार किसीको मालुम नहीं हुआ।

दोनों राजाओंने पाणिग्रहणकी तिथि निश्चित करा ली थी। अतः नियत तिथिपर विवाहकी सब कार्रवाईयां होने लगीं। कुमारने बहुत इधर उधर किया, परंतु पिता माताके अनुरोध तथा सास ससुरके समझानेसे उन्होंने सुन्दरीके साथ संबंध करना स्वीकार कर लिया और नियत तिथिपर संबंध हो गया। यद्यपि कुमारने पिता माताके कहनेसे सुन्दरीसे शादी कर ली परंतु उनका चित्त उससे विरुद्ध हो रहा।

सुन्दरी जब अपने पतिके भवनमें आई और स्वामीके रुष्ट होनेका समाचार ज्ञात हुआ तब उसे कितना दुःख हुआ वह लिखा नहीं जा सकता। वह भोजन, वस्त्र, श्रृङ्गार आदिसे उदासीन होकर दिन रात अपने सर्वस्व पतिको प्रसन्न करनेमें लगी रहती थी, परंतु स्वामीका सन्देह किसी तरह निवृत्त नहीं हुआ। उन्होंने कभी सुन्दरी पर प्रेमकी दृष्टिसे भी नहीं देखा।

इस तरह सिर्फ स्वामीके नामका स्मरण करते हुए उस सर्वांग सुन्दरी सतीको २२ साल हो गये। शरीर चिंतासे कृश होते२ बिलकुल मुरझा गया। इस दुःखरूपी समुद्रको पार करना सुन्दरी के लिये असम्भव हो गया और वह निराश होकर अपने जीवन सूर्यको अस्ताचल पर पहुंचा समझ चुकी थी कि यकायक अपने पूर्वकृत पुण्य कार्योंके प्रतापसे उसके सौभाग्यका सूर्य चमक उठा, जिसका वृत्तान्त नीचे दिया जाता है :-

महाराज प्रह्लादकी राजसभामें लंकेश्वर-रावणका दूत वरुण के साथ युद्ध करनेमें सहायता देनेके लिये रण निमंत्रण लेकर आया, महाराजने उसे सहर्ष अंगीकार किया और उसी समय फौजी तैयारीकी आज्ञा दे दी। कुमारीकी युवावस्था थी। युद्धकी घोषणा सुनकर उनका तेज उमड़ पड़ा। शीघ्र पिताकी सेवामें उपस्थित होकर निवेदन किया कि इस कार्यके लिए आप क्यों तकलीफ करते हैं? मुझे युद्धमें जानेकी आज्ञा दीजिये। आपके आशीर्वादसे मैं शीघ्र विजयलक्ष्मी प्राप्तकर आपके दर्शन करूंगा। पिताने पुत्रको युद्धोचित शिक्षायें देकर युद्धस्थलमें जानेकी आज्ञा दी।

कुमार भी रणके वस्त्र पहन अस्त्र शस्त्रोसे सज्जित होकर एक उत्तम घोड़े पर सवार हुए और कूचका शब्द कर महलसे बाहर होना ही चाहते थे कि उन्होंने परम साध्वी सुशीला सती अञ्जनासुन्दरीको दरवाजे पर खड़ी दर्शनोंकी प्रतीक्षामें देखा। कुमारको यह कार्य अच्छा नहीं मालुम हुआ और सुन्दरीकी विनय पर कुछ ध्यान न देते हुए वे अपनी सेनामें चले गये। सुन्दरीके हृदय पर दुःखोंका पहाड़ टूट पड़ा। जिस स्वामीके कुशल समाचारों पर ही वह जीवन धारण किये हुए थी आज

वे युद्धमें चले गये हैं, नहीं कहा जा सकता है कि इस पर्यायमें फिर स्वामीके दर्शन हो सकेंगे या नहीं। इत्यादि विचारों को करती हुई भारतके गौरवको प्रदीप्त करनेवाली एक परम सुन्दरी सती अपने भाग्यको दोष देती हुई विलाप कर रही है। सिवाय वीतराग चिदानन्द परमात्माके ध्यानके उसको इस असह्य दुःखसे निवृत्त करनेवाला कोई दिखाई नहीं देता था।

महाराज प्रह्लादके सुपुत्र वायुकुमारकी सेना दिनमें चलते चलते सन्ध्याको एक सरोवरके निकट डेरे डालकर विश्राम करनेके लिये ठहर गई। कुमार भी अपने डेरेमें विश्राम करनेके लिये ठहरे। कुछ जलपान करके शामके अपूर्व समयमें सरोवर और प्रकृतिका सौंदर्य देखनेके लिए कुमार अपने मित्र सहित टहलनेके लिए खेमेसे बाहर हुए।

खेमेसे बाहर निकलते ही प्रकृतिने उन्हें उपदेश दिया जो हजारों उपदेशकोसे भी नहीं दिया जा सकता जिसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती, जिस ज्ञानके विषयमें इनके हृदयमें बिलकुल अन्धकार था एकाएक ज्ञानका सूर्य दीप्त हो गया। इन्होंने देखा कि एक चकवी रात्रि आनेके कारणसे अपने पतिसे विछोह होनेका समय देख अत्यंत दुःखके साथ कोलाहल मचा रही है।

जब इनको ज्ञात हुआ कि जिस तिर्यंच पक्षीको मनुष्यकी अपेक्षा लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है, अपने प्रियका वियोग होनेसे इतना कष्ट होता है जिसका अन्त नहीं है, तो फिर मेरी प्यारी पत्नी अञ्जनासुन्दरीको, जिसको मैंने २२ साल हो चुके बिल्कुल त्याग दिया है, क्या दशा होगी? उसके दुःखोंका वर्णन करनेका क्या इस भूमण्डलमें कोई समर्थ है?

प्रकृतिने उत्तर दिया-नहीं! उसी समय इनको अञ्जनाके युद्धमें कूचके समय आनेकी बात याद आई, जिससे इनका शरीर विह्वल हो गया। प्रेमाश्रुसे नेत्र परिपूर्ण हो गये। मित्रसे इन्होंने उसी समय अञ्जनासुन्दरीसे मिलनेका अपना विचार प्रगट किया और गुप्त रीतिने रात्रिहीमें अञ्जनासुन्दरीके महलोंमें आये, तो सुन्दरीका हृदय आनन्दसे प्रफुल्लित हो गया।

उसके आनन्दका अनुभव पाठक ही कर लेवें मुझमें शक्ति नहीं हैं जो लिखकर बता सकूं। उस रात्रिको कुमारने अपनी प्यारीसे अपने हर तरहके अपराधोंके लिये अति नम्र हो क्षमा मांगी तथा अपनेको बहुत दोष दिया। परंतु सुन्दरीने उनके भ्रमका जड़ मूलसे उच्छेद कर अपने ही पूर्वकृत कर्मोका दोष बतलाया। पश्चात् पति पत्नीने आनन्दसे रात्रि पूर्ण की।

सुबह होते ही कुमार सुन्दरीसे बिदा होने लगे, तब सुन्दरीने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि मेरा ऋतुकालका समय है, सम्भव है, कि मुझे गर्भ रह जाय, और आप युद्धमें जा रहे हैं इसलिये समय भी आपको ज्यादा लगेगा इससे आप अपने पिता माताको अपने आनेकी सूचना करते जाइये, परंतु कुमारने लज्जावश ऐसा करना पसन्द नहीं किया और कहा कि अगर ऐसा हुआ तो कोई हर्ज नहीं है। युद्धमें हमको ज्यादा समय नहीं लगेगा, हम शीघ्र आवेंगे। तुम किसी तरहकी चिंता नहीं करना। इत्यादि हर तरहसे संतोषित कर प्रेमालिंगन कर बिदा हुए सुबह होते होते अपनी सेनामें पहुंचे। यह हाल किसीको ज्ञात नहीं हुआ।

वायुकुमार युद्धस्थलमें पहुंचे। लड़ाई हुई। अंतमें वायुकुमारने अपने प्रबल प्रतापसे शत्रुको पराजित किया और विजयलक्ष्मी

प्राप्त कर अपने देशकी ओर रवाना हुए। समय बहुत हो गया था। यह अञ्जनासुन्दरीको वास्तवमें गर्भ रह गया और दिन दिन रूपकी वृद्धि होने लगी। यह समाचार सारे रनवासमें फैल गया। राजमहिषियोंको जब यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने कुलमें कलंक समझ बहुत दुःख प्रकट किया तथा अञ्जनासुन्दरी को अपने पिता माताके यहां पहुंचानेका विचार किया।

अञ्जनासुन्दरीने बहुत कुछ कहा परंतु उसको राजमहिषी द्वारा यही उत्तर मिला कि मेरे पुत्रने तो तूझे २२ वर्षसे त्याग दिया है और वह युद्धमें गया है फिर तेरे पास क्यों आवेगा? अंतमें निराश होकर सुन्दरीको अपने मातापिताके यहां जाना पडा। पिता माताने भी इसको कलङ्किनी समझ अपने महलोंमें आश्रय नहीं दिया। इस तरह अञ्जनासुन्दरी सती अपनी एक प्यारी सखीके साथ अपने पूर्वकृत कर्मोंके प्रतापसे तरह तरहके दुःख भोगती हुई जंगलोंमें फिरती फिरती एक गुफामें रहने लगी। वहीं पर उसने परम प्रतापी जगद्विख्यात पुत्र हनुमानको प्रसव किया।

अञ्जनासुन्दरी अपनी सखी सहित अनेक दुःखोंका सामना करती हुई पुत्रको पालने लगी। एक दिन सुन्दरी अपने स्वामीको याद कर जब फूट फूटकर रो रही थी तब हनूरुह द्वीपका राजा प्रतिसूर्य जो वायुयान द्वारा उस जंगलमें कर्णभेदी रोनेका शब्द सुन नीचे उतरा। गुफामें जाकर वृत्तांत सुना। ज्ञात होनेपर उसने अपनी भांजीको हृदयसे लगा लिया और हर तरहसे शांति देकर अपने साथ वायुयानमें बिठाकर अपने द्वीपमें ले गया। वहां पुत्रके जन्मोत्सवका आनन्द मनाया तथा अञ्जनासुन्दरीको अच्छी तरह रखा।

यहां जब वायुकुमार विजयलक्ष्मीका मुकुट पहने हुए अपनी प्यारी अञ्जनासुन्दरीसे शीघ्र जाकर मिलनेकी इच्छा किये हुए आदित्यपुरमें आये और नगर निवासियोंसे अपनी प्यारीको कलंकित होकर माता-पिताके यहां जाना सुना तो शीघ्र दुःखित होकर महेंद्रपुरका रास्ता लिया, परंतु जब वहां भी उसके दर्शन नहीं हुए तो अति ही खेदित होकर जंगलोंमें अपनी प्यारीकी खोज करते हुए उन्मत्तकी नाई फिरने लगे। यह हाल जब राजा प्रह्लाद व महेन्दुको ज्ञात हुआ तो उनको भी बहुत दुःख हुआ। दोनों ओरसे चारों तरफ सुन्दरी तथा वायुकुमारकी खोजमें दूत भेजे गये। एक दूत हनूरुह द्वीपमें राजा प्रतिसूर्यके पास भी पहूंचा और कुमारका सब हाल जब अंजनाको मालूम हुआ तो वह दुःखित होकर मूर्छित हो गई। प्रतिसूर्य उसको समझाकर आदित्यपुर आये तथा प्रल्हादको भी समझाकर दोनों कुमारकी खोजमें निकले, बहुत जंगलों व शहरोंकी खोजके पश्चात् एक महांधकारसे परिपूर्ण भयानक जंगलमें दोनों राजाओंने वायुकुमार को, जिनके शरीरमें सिवा पंजरके कुछ भी नहीं रह गया हैं, ध्यानमें मग्न हुए बैठे देखा।

राजा प्रह्लादने प्यारे पुत्रको हृदयसे लगा लिया, और अञ्जनासुन्दरीसे मिलनेका तथा तेजस्वी पुत्ररत्नके उत्पन्न होनेका समाचार कह सुनाया। यह समाचार सुनकर कुमार एकदम प्यारी! प्यारी!! प्यारी!!! कहके चिल्ला उठे। तब ध्यान टूटा तो सामने पिता आदि मान्य जनोंको देखकर लज्जावश मस्तक झुकाके रह गये।

उस निर्जन जंगलमें सब लोग शीघ्र ही हनुरुह द्वीप विदा हुए। वहां वायुकुमारकी प्यारी पवित्रता अर्धांगिनी अंजनासुन्दरीसे भेंट हुई। दोनोंने परस्पर अपने दुःखोको कहकर अपने अपने

हृदयको शांत किया तथा कुछ दिन वहां ही रहे फिर मादित्यपुरमें आकर दोनों पति-पत्नी पुत्र सहित आनन्दसे समय व्यतीत करने लगे। फिर उन्होंने अपनी जीवनलीला अत्यन्त सुख तथा राजलक्ष्मीके साथ व्यतीत की। कहीं पर प्रतिमाओंको धूपमें रखनेसे अंजनाको यह कष्ट हुआ था, यह जानकर इस चरित्रको पढ़कर प्रत्येक पाठक और पाठिकाके हृदयमें इस प्रश्नका उत्पन्न होना सम्भव हो सकता है कि इतने बड़े राजकुलमें जन्म लेनेवाली तथा एक महान् वंशमें उत्पन्न हुए राजकुमार वायुकुमार की सहचारिणी (वधू) राजकुमारी अंजनासुन्दरीको ऐसे अवर्णनीय दुःखोंका सामना किस कारणसे करना पड़ा ?

इस प्रश्नका उत्तर सरल है और अत्यन्त सरल है। इस बातको माननेमें सर्व साधारण सहमत हैं कि पूर्व जन्ममें उपार्जन किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल सबहीको अवश्य भोगना ही पड़ता है। इतर मनुष्योंको कथा तो दूर ही रही पर स्वयं तीर्थंकर भी इन कर्मोंकी विडम्बनाओंसे नहीं बचे।

पुराणोंका स्वाध्याय करनेवाले पाठकोंसे यह छिपा नहीं होगा कि परमपूज्य आदिनाथ भगवानको भी असाता वेदनीय कर्मके उदयसे छः महीनों तक आहार नहीं मिला था तो राजकुमारी अंजनासुन्दरीको उन्हीं कर्मोंके जालमें फंसकर इतनी वेदना और यातनाको सहन करना पड़ा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

इसकी कथा इस प्रकार है कि अपने पूर्व जन्ममें अंजनासुन्दरी किसी राजाकी पटरानी थी। उस राजाके यहां अंजनाके अतिरिक्त और भी रानियां थीं, पर इनको अपने पदका बडा अभिमान था। किसी कारणसे अंजनासे और एक सपत्नी (सौत) रानीमें ईर्षा हो गई। बस ईर्षावश होकर अपने पटरानी पदके अभिमानसे अंजनाने जिनेन्द्र भगवानके प्रतिबिंबको मंदिरके

समीप किसी बावड़ीके जलमें फिकवा दिया था और वह प्रतिमा बाईस घड़ी उस बावड़ीके जलमें पडी रही। जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमाका इतना अनादर करनेमें अंजनाने अशुभ कर्मका बंध किया तथा इस कर्मके उदयसे इस जन्ममें बाईस वर्षतक पतिका वियोग सहना पडा, माता-पिता द्वारा अनादर पाया, सास और ससुरके घरमें निवास करने तकको आश्रय नहीं मिला, सहायताकी याचना करनेपर भी परिवारके लोगोंने तथा अन्य सम्बन्धियोंने तनिक भी सहायता नहीं दी, नगरके लोगोंसे बुरी दृष्टिसे देखी गई और जिसने सुना उसीने निंदा की।

जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमा मात्रका अनादर करनेसे अंजनाको इतने दुःख सहन करने पड़े तो फिर जो पापात्मा जिन शासनकी अवज्ञा करेंगे उन्हें नहीं मालूम नरकोंमें कैसे कैसे दुःख सहने पडेगे? यही क्यों, ऐसी बातोंके शास्त्रोमें अनेक उदाहरण भरे हैं, पर उन सबके प्रदर्शन करानेकी आवश्यकता नहीं। सबके लिए यही उदाहरण काफी होगा कि जिन शासनकी सच्ची प्रभावना करनेवाले एक ध्यानस्थ दिगम्बर मुनिके गलेमें राजा श्रेणिकने अज्ञानतावश मरा हुआ सर्प डाल दिया था इसी कारणसे राजा श्रेणिकने सातवें नर्कका बन्ध किया था।

हमारे पाठकगण इस चरित्रसे केवल यही शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते कि अभिमानका फल क्या हो सकता हैं एवं जिन शासनकी अवज्ञाका फल क्या होता है, किन्तु हम इस चरित्रसे, नहीं नहीं चरित्रके एक एक अक्षरसे अच्छीसे अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हमें यह चरित्र बतलाता है कि मानव जन्मकी उपयोगिता और कर्तव्य क्या है। यह चरित्र मनुष्यके आलम्यको छुड़ाकर कर्मवीर बन सकता है। इस

चरित्रसे आम कल्याणके अभिलाषी मनुष्य आत्म कल्याण कर सकते हैं। और लोगोमें ख्यातिके चाहनेवाले नर ख्याति लाभ कर सकते हैं। विपत्तिमें साहसहीन न होना, एकबार कार्यमें सफलता प्राप्त न करने पर भी कार्यमें तत्पर रहना, इस बातकी शिक्षा हमें इस चरित्रसे मिल सकती है। कर्मोका खेल, मनुष्य स्वभावकी परिस्थिति, पतिव्रतकी रक्षा और एक अबलाका साहस इस चरित्रमें मिल सकता है।

चतुर स्त्रियां इस चरित्रको अनुशीलन करनेसे मानव जन्मको सफल कर सकती हैं और उसी पदको पा सकता हैं जिस पदको कि अंजनादिकने प्राप्त किया है। हमें आशा और विश्वास होता है कि ऐसे चरित्रोंका अगर हमारे जैन समाजकी अबलाओं पर अच्छा प्रभाव पड़े और वे इनके थोडी भी शिक्षा ग्रहण करें तो वे संसारका उद्धार करनेवाली देवियां कहलावेंगी और अपने चरित्रसे संसारको चकित करेंगी। हमें सच्चा भरोसा है कि जिस दिन हमारे यहांका अबला समाज ऐसे ऐसे चरित्रों का अनुशीलन और मनन करेगी उसी दिन हिन्दु समाजका ही नहीं किन्तु समस्त संसारका एक नवीन जीवन प्रभातका उदय होगा और उन्नतिके युगका प्रारम्भ होगा।

महिलाकुलभूषण-

७-श्रीमती मनोरमादेवी

मनोरमादेवी धन-धान्यसे परिपूर्ण भारतवर्षकी प्रसिद्ध नगरी उज्जैनके सुप्रसिद्ध सेठ महीदत्तकी कन्या थी। इकलौती कन्या होनेसे माता पिताका इनके उपर असीम प्रेम था। ८ वर्षकी अवस्था होने पर ये संसारसे विरक्त एक जैन साध्वी (जिसे आर्जिका कहते हैं) के पास शिक्षा प्राप्त करनेके लिये भेजी गई। गृहकार्यकी सम्पूर्ण शिक्षासे दीक्षित होनेपर आर्जिकाने अंतिमवार पातिव्रतधर्मका एक व्रत देकर कि "मन, वचन, कायसे अपने पतिके सिवाय किसी अन्य पुरुषको अधर्म दृष्टिसे नहीं देखना!" तथा इसके पालनेकी प्रतिज्ञा देकर कुमारीको माता-पिताके यहां भेज दिया।

१६ वर्षकी आयु होनेपर कुमारीकी यौवनावस्थाको विचार कर सेठ महीदत्तने अपने पुरोहितको बुलाया और उसके हाथमें टीकेके लिए बहु मूल्य मोतियोंका हार दे कुमारीके योग्य वरकी खोजमें भेजा। पुरोहितजी वरकी तलाशमें फिरते फिरते कौशल प्रदेशमें वैजयंती नगरमें पहुंचे। वहांके महामान्य सेठ महीपाल जौहरीके पुत्र कुमार सुखानन्दको गुण, अवस्था आदिमें कुमारीके योग्य वर समझ उन्हें हार व श्रीफल देकर सम्बन्ध निश्चित कर वापिस उज्जैनमें आये। तथा सुखानन्दकुमारकी यथायोग्य प्रसंशा सेठ महीदत्तसे कर संबंध निश्चित होनेका समाचार सुनाया। शुभ तिथि पर मनोरमादेवी और कुमार सुखानन्दका विवाह सम्बन्ध हो गया और कुमारी अपने पतिके यहां जाकर गृहकार्यमें प्रवृत्त हुई।

कुछ समय सुखसे रहनेके पश्चात् एक दिन रात्रिके समय जब सुखानन्दकुमार अपनी कोमल शय्यापर विश्राम ले रहे थे कि अचानक नींद खुल गई और सोचने लगे कि मैं बिना उद्योगके पिताकी उत्पन्न की हुई सम्पत्तिसे आनंद करता हूँ। मेरी अवस्था भी अब उद्योग करनेके योग्य हो गई है, इसलिये अब मुझे व्यापारमें प्रवृत्त होकर सम्पत्ति पेदा करनी चाहिये। उन्होंने अपना यह विचार तत्काल अपनी प्यारी अर्घांगिनीकों भी निद्रासे सचेत कर सुना दिया।

मनोरमाने अपने स्वामीके इन उत्कृष्ट विचारोंकी प्रशंसा की तथा घर पर ही रहकर व्यापार करनेका परामर्श दिया। परंतु सुखानंदकुमारने अनेक कारणोंसे घर पर ही रहकर व्यापार पसंद न कर विदेशमें अधिक सफलता समझ विदेश ही जानेका निश्चय किया। मनोरमाको यद्यपि पतिसे विछोह होनेका दुःख अधिक हुआ तब भी उसने कुमारको यथायोग्य वैदेशिक शिक्षायें देकर खुशीसे विदेश जाकर व्यापारमें सफलता प्राप्त करनेकी राय दी। प्रातःकाल होते होते कुमारने यह अपना विचार अपने पूज्य पिताजीसे निवेदन किया और जानेकी आज्ञा मांगी। पिताने भी कई तरहकी युक्तियां समझाकर उन्हें व्यापारके लिये जानेकी आज्ञा दी और वे स्थल जल मार्गसे द्वीपांतरोंमें व्यापारके निमित्त प्रस्थान कर गये।

कुमारी मनोरमादेवी अपने स्वामी सुखानन्दको किसी तरहको तकलीफोका सामना करना न पडे तथा व्यापारमें अधिक सफलता हो इसलिये परब्रह्म परमात्माका ध्यान किया करती थी। एक दिन जबकि कुमारी प्रातःकालकी क्रियासे निवृत्त हो स्नान कर अपने प्रासादकी छतपर खड़ी अपने केशोंको खोलकर सुखा रही थी कि वहांका राजकुमार घोडे पर चढ़ा हुआ निकला।

राजकुमारकी दृष्टि कुमारी पर पडी। उसके रूप लावण्यको देखकर राजकुमारको मनोजके शरोंका निशाना बनना पड़ा। राजकुमारने अपने महलोंमें जाकर एक दासीको बुलाया तथा हर तरहकी युक्ति समझकर जिस प्रकार हो सके कुमारीको लानेके लिये भेजा। दासीने जाकर अपने बुद्धिप्राबल्यसे कुमारिकाके सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसे सुनकर कुमारीने भयंकर रूप धारण कर लिया, नेत्र रक्तवर्ण हो गये, हृदय रोमांचित हो गया, उसने दासीको तथा राजकुमारको खूब फटकारा, तथा इसको महलोंसे निकाल बाहर किया।

दासी अपनेको अपमानित समझ इसका बदला लेनेका विचार कर तुरत सुखानन्दजीकी माताके पास गई और उन्हें कुमारीके विरुद्ध इस तरह भड़काया कि तुम्हारा पुत्र तो द्वीपांतरमें रोजगार करने गया है, परंतु तुम्हारी पुत्रवधू नित्य राजकुमारके महलोंमें जाती है। सेठानीजीको यह समाचार सुननेसे अत्यन्त खेद हुआ। उन्होंने इसकी छानबीन कुछ न कर अपने कुलमें कलंक लगता हुआ समझ चुपकेसे यह समाचार सेठजीसे कह सुनाया और प्रस्ताव किया कि पुत्रवधूको माता पिताके यहां भेजनेका बहाना बतलाकर जंगलमें छुड़वा देना चाहिये। सेठजीने भी सेठानीजीकी बातों पर विश्वास कर इस प्रस्तावका समर्थन किया और प्रस्तावानुसार मनोरमा जंगलमें छुड़वानेके लिये भेज दी गई।

जब उस सुशीला परम साध्वी सती मनोरमाको यह सब हाल उसके सारथिसे ज्ञात हुआ जो उसे जंगलमें छोड़नेके लिये जाता था, तब उसे एकाएक मूर्च्छा आ गई। मूर्च्छासे जागृत होनेपर फूट फूटकर रोने लगी। अपने परम प्यारे स्वामीका नाम स्मरण कर इस विपत्तिसागरसे उद्धार करनेके लिये उन्हें

जोर जोरसे पुकारने लगी। इस निराश्रित अबलाके कर्णभेदी विलापके शब्दसे सारथिका हृदय पानी पानी हो गया और उसके कहे अनुसार उसके माता पिताके घर उज्जैन पहुंचा देनेकी प्रतिज्ञा की। उज्जैन पहुंचने पर सेठ महीदत्तने भी एकाएक पुत्रीके आनेसे संपल्प विकल्प कर उसे अपने घरमें रखनेकी अनिच्छा प्रकट की। तब सारथिने निराश होकर बिलखती हुई मनोरमा सुन्दरीको एक सघन जंगलमें छोड़कर वैजयन्ती नगरका रास्ता लिया।

कुमारी अपने भाग्यको धिक्कारती हुई वनस्पतियोंसे अपने जीवनके दिन निर्वाह करने लगी। कभी अपने पतिवियोगके दुःखोंपर, कभी कलंकके पातकपर कभी पूर्वोपार्जित कर्मों पर फूट फूटकर रोने लगती थी। परंतु उसके कर्मोंने उसे अभी तक नहीं छोड़ा और सहसा एक विपत्तिका और पहाड़ उसके उपर डाल दिया जिसका वर्णन इस प्रकार है --

सुन्दरी एक वृक्षकी छायामें बैठी हुई अपने हृदय-सर्वस्व स्वामी सुखानन्दके ध्यानमें मग्न थी कि वहांके राजगृहका राजकुमार वनक्रीड़ा करता हुआ आ निकला। यह भी सुन्दरीके रूप यौवन पर आसक्त हो गया और सुन्दरीको अपने नगरमें ले जाकर एक मनोज्ञ महलमें रखा। सुन्दरीका जीवनाकाश कठोर कृष्ण मेघदलोंसे आच्छत्र हो गया। अब उसे सिवाय एक ईश्वरके ओर किसीका आधार नहीं रहा। उसने हृदयमें ईश्वरका ध्यान कर प्रार्थना की कि हे जगदोद्धार! चिदानन्द दीनबन्धु! दीनानाथ परमेश्वर! आज मेरा सर्वस्व लुटा जा रहा है। मेरा सतीत्व भ्रष्ट करनेके लिये यह नररूप राक्षस शीघ्र आनेवाला है, इसलिये शीघ्र मेरे सतीत्वकी रक्षा कीजिये!!!

राजकुमार भी अपनी कुवासनाको तृप्त करनेके लिये शीघ्र आ पहूंचा। परंतु शीलकी महिमासे दैवीशक्तिने प्रगट होकर राजकुमारको उठाकर गचपर पछाड़ दिया जिससे वह मूर्छित हो गया।

मूर्छासे जागने पर अपने किये पर बहुत पछतावा करने लगा तथा इसके प्रायश्चितके लिये कुमारीसे हाथ जोड़कर क्षमाकी प्रार्थना की, कुमारीकी आज्ञानुसार राजकुमारने उसको उसी स्थान पर छोड़ दिया जिस स्थानसे कि उसे लाया था।

इस प्रकार सुन्दरी ईश्वरको शतशः धन्यवाद देती हुई उसी भयानक जंगलमें आई और फिर अपने जीवनके दिन व्यतीत करने लगी। भाग्यवशात् उस जंगलमें काशीका धनिक सेठ धनदत्त व्यापार करता हुआ निकला। कुमारीका रोदन सुन उसे विषद्सागरमें फंसी देख सेठजीने उससे उसका सब हाल पूछा। कुमारीने अपनी आरम्भसे अन्त तकको सब दुःखमय कहानी सुनाई। सेठ धनदत्तने उस पर बहुत दुःख प्रगट किया तथा कुमारीकी अपनी भांजी बतलाकर अपने घर काशीको ले गया तथा सुखपूर्वक रखा।

यहां सुखानन्दकुमार जब व्यापारमें अपनी विलक्षण बुद्धिसे आशातीत सफलता प्राप्त कर अपनी जन्मभूमि वेजयन्तीनगरीको लौट आ रहे थे तब नगरसे थोडी दूरी पर उनकी अपनी प्राणप्यारी सहधर्मिणीके झूठे कलंकित होकर निकाले जानेका दुःखद समाचार मिला। यह समाचार सुननेसे इनको मूर्च्छा आ गई। जागृत होने पर अपना सामान पिताजीकी सेवामें समर्पण करनेके लिए अपने साथियोंको सौंपकर योगीका भेष रखकर ये अपनी गृहलक्ष्मीकी खोजमें निकले। खोजते२ ये राजगृही

नगरीमें पहुंचे। जब वहां भी निराश होना पडा तब फिर जंगल२ भटकते फिरते कई महीनोंका वियोगरूपी दुःख तथा वनवासके क्लेश सहते हुए काशीमें पहूंचे और अपनी सहधर्मिणीसे मिलकर वहां कुछ दिन सुखसे रहे।

जब वैजयन्ती नगरके राजाको सुन्दरी मनोरमाके कलंकित होकर अन्यत्र जंगलमें भेजे जानेका तथा कुमार सुखानन्दको उसकी खोजमें जंगल जंगल भटकते फिरनेका हाल ज्ञात हुआ तब उन्होंने तुरंत सेठ महीपालको बुलाकर उन दोनोंको खोजनेके लिए अनुरोध किया। तदनुसार शीघ्र सेठजीने चारों तरफ अपने अनुचर भेजे तथा आप स्वयं भी पुत्र व पुत्र-वधूकी खोजमें निकले। खोजते खोजते ये भी काशीमें पहुंचे, पुत्र व पुत्र-वधूको देख आनन्दसागरमें मग्न हो गये और उनको लेकर शीघ्र वैजयन्ती नगरीको चल दिये।

मनोरमासुन्दरीको अपने कलंकका बहुत ही दुःख था, इसलिए उसने इसके इन्साफ वगैर नगरीमें प्रवेश करनेसे इन्कार किया। यह इन्साफ राजाने खुद अपने हाथमें लिया और तिथि दूसरे दिनकी नियत कर दी। पुण्यका प्रताप बडा प्रबल होता है। इस बीचमें रात्रिको जो लीला हुई वह अलौकिक है। मानो देवशक्ति पतिव्रता स्त्रियोंका न्याय राजासे होना अयोग्य समझ खुद न्याय करनेके लिए इस मृत्युलोकमें अवतीर्ण हुई। रात्रिको नगरके चारों ओरकी चहार दीवारोंके सब बड़े बड़े फाटक बन्द हो गए और राजाको स्वप्न हुआ कि "नगरके फाटक बन्द कर दिये गये हैं। पतिव्रता स्त्रीके चरणस्पर्श मात्रसे ही वे खुल सकेंगे।" प्रातःकाल ही राजाको नगरके फाटक बन्द होनेका समाचार मिला। राजाको शीघ्र ही अपने स्वप्नकी बात

याद आयी और उन्होंने मौके पर स्वतः जाकर नगरका कुछ स्त्रियोंका क्रमशः दरवाजे पर चरणस्पर्श करते हुए चले जानेकी आज्ञा दी।

नगरकी छोटीसे छोटी स्त्रीसे लगाकर राजमहिषी तकके चरणोंका स्पर्श दरवाजेसे हो गया परंतु दरवाजा नहीं खुला। तब तक सब भेद समझ कर राजाने आकर मनोरमादेवीकी शरणमें सब समाचार कहकर प्रार्थना की कि हे नारीकुलरत्न महा पतिव्रता मनोरमा! चलकर अपने चरणकमलोंके स्पर्शसे दरवाजेको खोलो और अपनी कीर्तिरूपी विजयवैजयन्तीको सारे भूमण्डलमें उड़ाकर स्त्रियोंकी लाज रक्खो। मनोरमासुन्दरी दरवाजे पर गई और परमात्माका ध्यान रखकर दरवाजेसे चरणस्पर्श किया कि उसी समय मेघकी सी गडगडाहट करता हुआ दरवाजा खुल गया। मनोरमादेवीके पतिव्रतकी कीर्तिकौमुदी सारी दुनियामें फैल गई, जिसे आज कई हजार वर्षोके व्यतीत होने पर भी हम लोग सुनकर अपनेको कृतार्थ समझते हैं तथा उस सरला साध्वी जगतपूज्या महिला कुलकमलचूडामणि मनोरमादेवीकी सहस्त्र मुखसे मुक्तकण्ठ होकर वारम्वार प्रशंसा करते हैं।

मनोरमादेवी अपने राजप्रासादोंको भी नीचे दिखानेवाले गगनचुम्बी महलोंमें आकर आनन्दसे पतिसेवामें मग्न हुई। दोनों दाम्पतिने फिर सुखसे संसारयात्राको पूर्णकर हमको अपना आदर्श बतलाकर अनन्तधामका मार्ग लिया।

धर्मकी महिमासे कठिनतर कार्य भी सुलभ हो जाते हैं। अंतमें धर्महीकी जय होती है। धर्मके प्रभावसे मनोरमाने शीलकी साड़ी पुनः धारण की और व्यर्थ अपवाद लगानेवालोंका मस्तक नीचा किया।

नारीका भूषण शील ही है। इसीसे उनकी शोभा है। शीलवती नारी जिस घरमें रहती है वहां सुतक पातक कभी नहीं होता है और जहां कुलटा रहती है वहां दिन रात सूतक पातक रहता है, ऐसा जिन शासनका वचन है। शीलहीसे शीवपदकी प्राप्ति होती है, इन्द्र अहमिन्द्र आदिके पद भी इसीके सेवनसे मिलते हैं। शीलवतीको विपत्तिकी घड़ी भी सुलभतासे कट जाती है और पगमें सुख ही सुख मिलता है।

संसारमें शीलकी महिमा अपरम्पार है। यही सार है। व्रत धर्म पालनेका प्रत्यक्ष फल इससे बढ़कर और क्या होगा कि स्वर्गके देवोंने भी मनोरमाकी सहायता की। इसलिए जगत मात्रके नरनारियोंको शीलव्रत धारण करना उचित है।

वह दिन कैसे महत्त्वका होगा जिस दिन भारतकी गौरव लक्ष्मीको फिरसे प्राप्त करनेके लिए मनोरमा सुन्दरी जैसी गृहलक्ष्मी आकर भारतके हरएक गृहस्थके घरमें जन्म लेंगी, उस दिनकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। हम परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि उस दिनके शीघ्र दर्शन हों और ऐसी ही पतिव्रता हमारे गृहोंको अपनी चरणरजसे पवित्र करें।

❖❖❖

दृढ़व्रती–

८-श्रीमती रानी रयनमंजूषा

रानी रयनमंजूषा हंसद्वीपके सम्राट कनककेतुकी कन्या थीं। इनके चित्र विचित्र नामक दो भाई थे। राजकुमारी रयनमंजूषाका बाल्यावस्थाका सोन्दर्य अपूर्व था। छोटी ही अवस्थासे इनके पठन-पाठनका योग्य प्रबन्ध किया गया जिससे थोंडे ही दिनोंमें यह स्त्रियोचित शिक्षासे परिपूर्ण हो गई तथा अपनी बुद्धि और गुणोंसे पिता माताके चित्तमें असीम आल्हाद उत्पन्न करने लगीं। कुमारीकी यौवनावस्था समीप आई देख राजाको इनके पाणिग्रहणकी चिंता हुई। एक दिन राजा कनककेतु अद्वितीय गुणोंसे विभूषित भविष्यद् वक्ता जैन मुनिके दर्शनोंको गये और उन्होंने पुत्रीके पाणिग्रहणके विषयमें भी प्रश्न किया।

विलक्षण योगी मुनि महाराजने कहा कि आपकी राजधानीमें सहस्त्रकूट नामका देवालय है उसके किवाड़ अत्यन्त भयंकर और मजबूत है, महापराक्रमी योद्धाके सिवा उन्हें कोई खोल नहीं सकता है। जो वीर पुरुष उनको खोलेगा वही रयनमंजूषाका पाणिग्रहण करेगा। राजधानीमें आकर राजाने सहस्त्रकूट देवालय पर पहरा बैठा दिया और आज्ञा दी कि जो व्यक्ति इसके किवाडोंको खोले, तुरंत हमको उसका समाचार दिया जावे।

सुप्रसिद्ध चम्पापुरीका राजा श्रीपालको, जो कुष्टरोगसे पीडित हो अपनी राजधानीसे निकल जंगल जंगल फिरता था, पुण्योदयसे अचानक उसी सती साध्वी महापतिव्रता राजकुमारी मैनासुन्दरी समान पत्नीकी प्राप्ति हुई, जिसके उद्योगसे उसका शरीर कुष्ट रोगसे निवृत्त होकर बहुत सुन्दर हो गया। अपनी

प्यारी स्त्रीसे देश पर्यटनके लिये विदा होकर कौशाम्बीपुरके प्रसिद्ध व्यापारी धवलसेठके साथ अपनेको गुप्त रखे हुए साधारण जनके समान राजा श्रीपाल घूमता घूमता हंसद्वीपकी राजधानीमें आ पहुंचा। यह जैन धर्मका पक्का श्रद्धालु था। इसलिये श्री वीतराग परमेश्वरके दर्शनोंकी खोजमें शहरमें निकला। खोजते खोजते यह उसी सहस्त्रकूट चैत्यालयके पास आ पहुंचा जिसके किवाड़ किसीसे खुलते भी नहीं थे।

राजा श्रीपालको दर्शनोंकी बड़ी उत्कण्ठा थी इसलिये उन्होंने ईश्वरका नाम स्मरण करके किवाड़ पर पूर्ण बलके साथ धक्का दिया। कर्णभेदी शब्दके साथ किवाड़ खुल गये और मंदिरके भीतर प्रवेश कर भक्तिभावसे श्री भगवानके दर्शन कर अपने नेत्रोंको शांत किया। इधर किवाड़ खुलनेकी आवाजसे पहेरेदारोंमें कोलाहल मच गया। शीघ्र ही महाराजको शुभ समाचार सुनाया गया।

राजाने अपनी कन्याके योग्य वरकी अनायास प्राप्तिसे अत्यन्त आनंद मनाया तथा शुभ तिथिमें रयनमंजूषाका विवाह राजा श्रीपालके साथ कर दिया।

राजा श्रीपाल कुछ दिन अपनी नवीन ससुरालमें अत्यंत सुखके साथ रहे। परंतु जब व्यापारी धनकुबेर धवलसेठ अपने व्यापारकी समाप्ति कर हंसद्वीपसे बिदा होने लगा तब राजा श्रीपालको अपने देश पर्यटनकी याद आई और वे जानेको उन्नत हुए। यद्यपि उन्होंने राजकुमारी रयनमंजूषाको विदेशके क्लेशोंको भयानक रूपसे बतलाकर उसको राजप्रासादोंमें रहनेका ही अनुरोध किया परंतु कुमारीने पति-वियोगके दुःखोंके सहन करनेके लिये अपनेको असमर्थ बतलाकर तथा पतिकी सेवा ही अपना श्रेष्ठ धर्म समझाकर पतिके साथ रहना ही

श्रेष्ठ समझा और साथ चलनेको उन्नत हुई। अंतमें राजा श्रीपाल और रानी रयनमंजूषा दोनों प्रतापी धवलके जहाजमें बैठकर विदेशको प्रस्थानित हुए।

अथाह समुद्रके पृष्ठ भाग पर लक्ष्मीवान धवलसेठका जहाज वायुवेगसे चला जा रहा था। ऊपर आकाश और नीचे पानीके सिवाय चारों ओर कुछ भी दिखाई नहीं देता था। जहाजके सब यात्री अपने अपने कार्यमें मग्न थे। यकायक धवलसेठकी कुटिल दृष्टि सुकुमारी राजकुमारी रयनमंजूषा पर पडी। रयनमंजूषाके रूप, यौवन, कोमलता आदि सराहनीय गुणों को देखकर धवलसेठको कामदेवके तीक्ष्ण शरोंका निशाना बनना पड़ा। बुद्धि नष्ट हो गई और कुवासनाने उसके हृदयपर अपना पूर्ण आधिपत्य जमा लिया और उसकी पूर्तिके लिए वह प्रयत्न सोचने लगा। उसने विचार किया कि अगर श्रीपालको इस पर्यायसे मुक्त कर दें तो रयनमंजूषा मेरे हाथ आ सकती है।

इस कुटिल विचारको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए उस नष्टबुद्धि दुराचारी धवलसेठने शीघ्र ही राजा श्रीपालको समुद्रमें गिरवा दिया और कृत्रिम दुःख प्रकाशित करने लगा। राजा श्रीपाल सब कारण समझ स्थिर चित्तसे परमेश्वरका नाम स्मरण करने लगा। सौभाग्यसे कुछ देरके पश्चात् उन्हें एक काठका तख्ता बहता हुआ मिल गया, उसीपर वह बैठ गये। अपने जीवनके बचनेकी आशा समझकर उन्होंने चिदानन्द अविनाशी परब्रह्म परमात्माको कोटिशः धन्यवाद दिया और उन्हींका स्मरण करते हुए बहते चले।

यहां जब कोमल चित्त सुशीला राजकुमारी रयनमंजूषाको अपने पतिके समुद्रमें गिरनेका हाल ज्ञात हुआ वह तुरंत मूर्छित

होकर गिर पड़ी। उसके दुःखका पारावार नहीं रहा। जो राजकुमारी अपने पतिके थोडे दिनोंके बिछोहके दुःखोंको भी सहनेमें असमर्थ थी उसे अपने स्वामीका इन जन्मभरके लिए बिछोह हुआ है, कहिये उसके दुःखका अन्त कैसे हो सकता है? जिसका जीवनधार समुद्रकी अविरल तरंगोंमें लुप्त हो गया है उसे धैर्य कैसे हो सकता है? रयनमंजूषा मूर्छासे सचेत होने पर स्वामीका स्मरण कर फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी प्रतिध्वनिसे सारा जहाज कांप उठा! उसने भोजनादि त्याग दिया, केवल स्वामीके नामका ही स्मरण कर अपने जीवनको व्यतीत करने लगी। अभीतक उस सरल साध्वी सुन्दरीको यह नहीं ज्ञात हुआ है कि यह कुकृत्य इसी नर-पिशाच धवलसेठका है।

धवलसेठ अपने कार्यकी सिद्धिका समय निकट जान बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने कुमारीको श्रीपालसे असन्तुष्ट कराकर अपने उपर प्रसन्न करानेके लिए एक दूतीको कुमारीके पास भेजा। दूतीने कई चालोंसे कुमारीको समझाया परंतु कुमारी तो महापतिव्रता पत्नी थी, वह कैसे अपने स्थिर न्यायमार्गके कृत्योंके विरुद्ध कार्य कर सकती थी? उसने दूतीको खूब धमकाया।

धवलसेठने दूतीसे अपने कार्यकी सिद्धि होना असम्भव समझा तब वह स्वयं कुमारीकी सेवामें जाकर प्रार्थना करने लगा-"तुम्हारा पति तो अब परलोक चला गया है। तथा तुम्हारी इस समय किशोरावस्था है। तुम अपने वैधव्यका किस तरह निर्वाह कर सकोगी? तुम्हारा पति श्रीपाल मेरे पास ही नौकर था। तुमको चाहिये कि मेरे उपर प्रसन्न होकर इच्छित सुखोंको भोगो।" इत्यादि इत्यादि उसने अपनी प्रशंसाकी बहुतसी बात कहीं, परंतु जब रयनमंजूषाने उस दुष्टकी एक भी बातपर ध्यान

नहीं दिया तब वह बलात्कार उसका सतीत्व भंग करनेके लिए उद्यत हुआ। वह महापतिव्रता अबला राजकुमारी रयनमंजूषा अपना सर्वस्व खोया समझ और सिवाय उस चिदानन्द अनन्त शक्तिवान परमात्माके कोई इस दुःखसे छुटकारा करनेवाला न जान प्रार्थना करने लगी--

''हे प्रभो! यह नीच मुझ अबलाका सर्वस्व हरण करनेके लिए उद्यत हुआ है, शीघ्र मेरी रक्षा कीजिये। अबलाके सतीत्वकी रक्षाके लिए शीघ्र दैवी शक्तिने प्रगट होकर अपनी अखण्ड शक्तिसे धवलसेठको मूर्छित कर दिया। और उसे अनेक प्रकारके दुःख देकर अपने कियेका पूर्ण फल दिया। अब धवलसेठको ज्ञात हुआ कि पतिव्रता नारियोंमें कितनी शक्ति होती है और उनका तेज क्या नहीं कर सकता है। उसने अपने दुष्कृत्योंके प्रायश्चितके लिये परमेश्वरकी स्तुति की और राजकुमारीसे भी क्षमाकी प्रार्थना की। उस समयसे धवलसेठकी बुद्धि ठीक हुई और फिर रयनमंजूषाको किसी तरहका मानसिक शारीरिक दुःख देने तकका उसने विचार नहीं किया।

यहां राजा श्रीपाल काठके तखतेपर बैठ तैरते२ अपने पुण्य कर्मोंके प्रतापसे कुंकुंमद्वीपके किनारे समुद्रसे पार हुए। किनारे पर वहांके राजाके बहुतसे कर्मचारी इसलिए पहरा दे रहे थे कि उसकी राजकुमारी गुणमालाका पाणिग्रहण वही पुरुष करने को समर्थ है, जो समुद्रमें बाहुबलसे तैरता हुआ किनारे आवेगा। तदनुसार कर्मचारियोंने राजा श्रीपालको आदरसत्कारसे ले जाकर राजाके निकट उपस्थित किया। राजाने प्रसन्न होकर अपनी प्यारी पुत्रीका विवाह श्रीपालसे कर दिया और श्रीपाल अपने भाग्यके चमत्कार पर आश्चर्य करते हुए नववधुके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे।

धवलसेठका जहाज भी समुद्रको लांघता हुआ इसी कुंकुमद्वीपके किनारे आया। सेठने राजाकी भेटके लिये अनुपम वस्तुओंको लेकर राजसभाकी ओर गमन किया। जब श्रीपालको राजसभामें उच्चासनपर प्रतिष्ठित हुए देखा तो सेठके होश उड़ गये। वह शीघ्र राजासे भेटकर विदा होने लगा। विचारा कि श्रीपाल मुझसे अवश्य बदला लेगा। इनका राजाके यहां मान है, इसलिए चाहे जो कुछ कर सकता है। अतः इसकी प्रतिष्ठाको नष्ट करना चाहिए। सोच समझकर उसने भाटोंको बुलवाया, कार्यसिद्धिपर उन्हें बहुतसे रुपये देनेका वादा कर बिदा किया और राजसभामें जाकर श्रीपालको अपना संबंधी पुकारकर उसे भाट सिद्ध करनेके लिए कहा। भाट लोगोंकी बुद्धि चंचल होती ही है, उन्होंने राजसभामें जाकर किसीने श्रीपालको अपना पुत्र, किसीने भतीजा, किसीने भाई आदि संबंध शब्दोंसे सम्बोधन किया।

राजाको शीघ्र भ्रम हो गया कि श्रीपाल जातिका भाट है। अपनी जातिका लोप कर इसने मेरी पुत्रीका पाणिग्रहण किया है। राजा बहुत रुष्ट हो गया और उसने श्रीपालको शूलीदण्डकी आज्ञा दी। श्रीपाल महायोद्धा थे, वे इस नाटकका अंतिम दृश्य देखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने इस विषयमें कुछ नहीं कहा, परंतु जब उनकी प्यारी पत्नी गुणमाला इससे भयभीत हो उनके चरणोंपर गिरकर उनसे जाति आदिके विषयमें प्रश्न कर उत्तरकी इच्छा करने लगी तो उन्होंने समझकर कहा कि समुद्रके किनारे पर एक व्यापारीका जहाज ठहरा हुआ है, उसमें रयनमंजूषा नामक एक राजकुमारी होगी, उससे मेरा सब हाल पूछना। वह विस्तार सहित तुम्हारी सब शंकाओंका समाधान करेगी।

तदनुसार राजकुमारी गुणमालाने जाकर कुमारी रयनमंजूषासे महाराज श्रीपालका सब वर्णन तथा धवलसेठकी कुटिलताकी सब कथा सुनी। परस्पर वार्तालाप करती हुई दोनों कुमारी राजाके समीप आयीं और यथार्थ हाल समझाकर राजा श्रीपाल को बन्धनसे मुक्त कराया। धवलसेठकी सम्पूर्ण कुटिलता प्रकाशित हो गई और उसके किये अनुसार राजाने उसे अत्यंत कठोर दण्ड देनेकी इच्छा प्रकट की, परंतु शुद्धचित्त दयालु राजा श्रीपालने जब अपने ही कारणसे धवलसेठका सर्वस्व नाश होता देखा तो उसको क्षमा कर दिया।

इस तरह राजा श्रीपाल राजकुमारी रयनमंजूषाको साथ लिए कई देशोंका पर्यटन करते हुए उज्जैन जाकर रानी मैनासुन्दरीको ले अत्यन्त विभूतिके साथ चम्पापुर अपनी पुरानी राजधानीमें आकर आनन्दसे रहने लगे। बहुत समय सुखके साथ रहनेके पश्चात् एक दिन मेघपटलोंको छिन्नभिन्न होते देख राजाको वैराग्य हो गया और वे दीक्षा लेकर जंगलोंमें तप करनेके लिए चले गए।

इधर जब रयनमंजूषाने देखा कि हमारे पतिदेवने सर्व-कल्याणकारी जैनेन्द्री दीक्षा धारण कर ली है तो अब पतिके बिना संसारमें नारियोंका रहना व सांसारिक सुखोंको भोगा करना किस कामका? ऐसा विचार कर पूर्व घटनाओंके स्मरण होनेसे संसारका असार स्वरूप जान, किसी आर्जिकाके समीप जाकर दीक्षा ग्रहण की और श्रावकोंके पञ्च अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत तथा तीन गुणव्रत इस प्रकार द्वादश व्रतोंका बड़ी योग्यतासे अतीचार और अनाचार रहित पालन किया।

अनित्य अशरणादि द्वादश भावनाओंकी भावना करके क्षुधा तृषादि परीषहोंको भलीभांति सहन करने लगी, एवं निरन्तर

ही अपने समयको स्वाध्यायादिमें बिताने लगी। क्रमशः एकादश प्रतिमाओंको धारण कर कर्मोंकी निर्जरा की और अंतमें समाधिमरण द्वारा आत्मोत्सर्ग किया और स्वर्गलक्ष्मीको प्राप्त किया।

हमारे वाचकोंने इस चरित्रको पढ़कर संसारकी प्रगतिका उदाहरण भलीभांति जाना होगा कि सज्जन कैसी ही दशामें क्यों न हो एवं दुष्ट लोग सज्जनसे चरमसीमाकी दुष्टता भी करें पर वे अपनी सज्जनताका परित्याग कभी नहीं करते। तथा यह बात भी अवश्य है कि सच्चे धर्मात्मा क्षुद्रोकी क्षुद्रतासे दुःखित कभी नहीं होते।

यही कारण है कि दुष्टमति धवलसेठके द्वारा कईबार घोर उपद्रव करने पर भी उसके दुष्ट कृत्योंका उसे बदला देनेके लिये नीचोंकी तरह श्रीपालके नीच चेष्टा कभी नहीं की। श्रीपालको मारनेकी चेष्टा की गई और उनका निरादर करनेके लिये भी धवलसेठने नीच उपायोंका अवलम्बन किया, पर श्रीपालने जिनेन्द्र भगवानके शासनमें अटल और अचल श्रद्धा होनेके कारण दुःखके अवसरों पर भी असाधारण सुखोंको भोगा।

सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात इस चरित्रमें रयनमंजूषाकी पतिभक्ति है। घोर आपत्ति आनेपर और धवलसेठकी भयावनी विभीषिकाओंसे भी पतिव्रता रयनमंजूषाका चित्त पति भक्तिसे बिचलित नहीं हुआ किंतु पतिप्रेममें ही लगा रहा।

क्या विचारशील पाठिका इस ओर ध्यान देंगी? मनुष्य समाजकी उन्नतिके लिये इस बातकी आवश्यकता है और अत्यंत

आवश्यकता है कि पति-पत्नीका परस्परमें यथोचित प्रेम हो, पर खेद है कि शिक्षा न मिलनेके कारण हमारी स्त्री समाजमें पतिभक्ति या पतिप्रेमकी उतनी मात्रा नहीं है जितनी होनी चाहिये। मानव समाजकी वास्तविक उन्नतिमें अन्य बाधाओंकी तरह स्त्री समाजका शिक्षित न होना, उन्हें अपने कर्तव्योंका ज्ञान न होना यह भी एक प्रबल बाधा है।

हम उस समयकी प्रतिक्षा कर रहे हैं कि जिस समय हमारे जैन समाजमें रयनमंजूषा जैसी पतिपरायणा नारियां उत्पन्न हों और जातिको फिर भी एकबार अपने सकर्मोसे उन्नतिशालिनी बनायें।

धन्य है यह भारतवर्ष, जहां ऐसी२ रमणीरत्न जन्म धारणकर इस भूमिको पवित्र कर गई हैं। यद्यपि ऐसे उदाहरणोंसे भारतका सम्पूर्ण इतिहास भरा पड़ा है तथापि हमने कुछ आदर्श होने योग्य शीलवती, सतीत्व परायण, नारियोंके चरित्रोंका यह संग्रह किया है। सुहृदय पाठक पाठिकाएं इसीसे अवश्य शिक्षा ग्रहण करेंगी और उनका अनुकरण करेंगी, यही आशा हृदयमें रख क्षुद्र लेखक संप्रति बिदा होती है।

ॐ शांतिः ! शांतिः !! शांतिः !!!

॥ इति॥

आध्यात्मिक ग्रंथ

बृहत सामायिक पाठ और प्रतिकमण	२०-००
नेमीनाथ पुराण	३०-००
जम्बूस्वामी चरित्र	२०-००
श्री पालचरित्र	२०-००
दशलक्षण धर्मदीपक (दशलक्षणव्रत कथा सहित्)	१०-००
महाराणी चेलनी	१५-००
धर्मपरीक्षा	२०-००
आराधना कथा - कोष भा-१	१५-००
मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र)	४०-००
मोक्षमार्गकी सच्ची कहानी	१०-००
जैनव्रत कथा (४० व्रत कथा)	२०-००
गौम्मट सार जीवकांड	३०-००
गौम्मट सार कर्मकांड	२८-००
स्वामी कार्तिकेय अनुप्रेक्षा	४२-००
परमात्मप्रकाश और योगसार	४०-००
प्रवचनसार-(कुन्दकुन्दाचार्य)	३६-००
लब्धिसार (क्षपणासार गर्भित)	६४-००
अष्टसहस्त्री भाग १-२-३	३२८-००
जैन धर्मका प्रा	१२१-००
णमोकार ग्रंथ	१३१-००
जैनेन्द्र सिद्धांत	६००-००
सर्वार्थसिद्धि-	१४०-००
भक्तामर रहस्य (	८०-००

कार्तिकेय अनुप्रक्षा
प्रकाश और योगसार
ार-(कुन्दकुन्दाचार्य)
र (क्षपणासार गर्भित)
त्री भाग १-२-३
प्राचीन

दिगम्बर जैन पुस्तकालय

खपाटिया चकला, गांधीचौक, सूरत-३. टे. नं. (०२६१) ४२७६२१